ओ३म्

सभ्यता का इतिहास

लेखक

पण्डित प्राणनाथ विद्यालंकार

Prof. of History & Economics

Gurukul Kangri Hardwar.

लेखक—शासन पद्धति इत्यादि।

प्रकाशक

के. सी. भल्ला के प्रबन्ध से स्टार प्रेस प्रयाग

में छपा तथा प्रकाशित हुआ।

प्रथम बार] १९१८ [मूल्य ।।।)

प्रस्तावना

(१)

बक्ल का परिचय

'सभ्यता के इतिहास' का प्रसिद्ध लेखक महाशय बक्ल १८२१ की चौथी नवम्बर को केन्ट जिले में "ली" नामी स्थान पर उत्पन्न हुआ था। स्वास्थ्य के उत्तम न होने के कारण स्कूल में बहुत देर तक वह न पढ़ सका। विद्याध्ययन के प्रति बक्ल की रुचि आरम्भ से ही थी। आरम्भ आरम्भ में इसने "शतरञ्ज" खेलने में बड़ी प्रसिद्धि पायी संसार प्रसिद्ध शतरञ्ज खिलाड़ियों में बक्ल भी एक गिना जाता है। १८४० में पिता की मृत्यु पर बक्ल ने अपना सारा समय विद्याध्यन में लगाना सोचा अगले १७ बर्षों में बक्ल ने प्रतिदिन १० घन्टे उसी उद्देश्य की पूर्ति में देने प्रारम्भ किये। १८५१ में उसने "सभ्यता के इतिहास" के लिखने का इरादा किया और उसके लिये तैयारी भी करने लग पड़ा। १८५७ में 'सभ्यता के इतिहास" का प्रथम भाग निकला इसके निकलते ही बक्ल की बेहद प्रसिद्धि हो गयी। इस पुस्तक के अनन्तर बक्ल का स्वास्थ बहुत गिर गया था अतः १८६१ में वह मिश्र की ओर सैर करने चला गया। मिश्र से अन्य स्थानों में भी वह सैर करने गया तथा घर की ओर लौटते हुये "डमास्कस नामी स्थान पर १८६२ की २६ वीं मई में उसकी मृत्यु हो गई। इस पुस्तक के लिखने में

विशेषतः बक्ल सभ्यता के इतिहास को ही अवलम्बित किया गया है ।

(२)

बक्ल का सिद्धान्त

बक्ल 'सभ्यता के इतिहास' के प्रकाशित होते ही अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया उसके निम्न लिखित । सिद्धान्त गिनाये जा सकते हैं ।

(१) प्राचीन ऐतिहासिकों की अयोग्यता से अथवा सामाजिक घटनाओं के अत्यन्त विषम होने से जातियों के स्वभाव तथा व्यवहार को बताने वाले सिद्धान्तों का अभी तक किसी ने भी समाज को ज्ञान नहीं दिया है । अर्थात् इतिहास को विज्ञान बनाने का अभी तक किसी ने भी यत्न नहीं किया है ।

(२) मानुषिक कार्य नियमबद्ध हैं तथा उनके नियम भी अन्य पदार्थों के सदृश निकाले जा सकते हैं । गणना शास्त्र (Statistic) ने बहुत कुछ ऐसे नियमों का ज्ञान भी दिया ही है ।

(३) सभ्यता की उत्पत्ति के जल बायु, भूमि भोजन तथा प्राकृतिक परिस्थितियां ही मुख्य कारण हैं । इनमें से प्रथम तीन पूंजी की वृद्धि तथा विभाग द्वारा जहां समाज को उन्नत करते हैं वहां चतुर्थ विचार की वृद्धि तथा विभाग द्वारा समाज की उन्नति होती है । भयानक अदम्य तथा क्रूर प्राकृतिक परिस्थिति मनुष्य की कल्पना शक्ति को बढ़ाती है और मधुर तथा शान्त प्राकृतिक परिस्थिति विचार शक्ति को ।

(४) योरुप तथा एशिया की सभ्यता में भिन्नता भी उपरिलिखित कारणों से ही है। योरुप में मनुष्य प्रकृति के ऊपर है तथा एशिया में मनुष्य प्रकृति के नीचे। यही कारण है कि योरुपियन लोग प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त कर सके हैं। परन्तु एशिया के लोग नहीं।

(५) योरुप की सभ्यता के उदय में प्राकृतिक नियमों का दिन पर दिन कम प्रभाव होता गया है तथा विचार सम्बन्धी नियमों की प्रबलता होती चली गयी है।

(६) मनुष्य समाज को उन्नति में सदाचार सम्बन्धी कारणों का कोई भी भाग नहीं है। उन्नति का एक मात्र कारण विचार समझना चाहिये।

(७) महान् पुरुष समाज के प्रतिकूल उन्नति या अवन्नति करने में अशक्त होते हैं। महान् पुरुष कोई भी कार्य करने में सफल नहीं हो सकते हैं, यदि उस कार्य के लिये पूर्व से ही समाज सन्नद्ध न हो।

(८) धर्म, साहित्य तथा राज्य सभ्यता की उत्पत्ति में कारण नहीं होते हैं, अपितु वह स्वयं सभ्यता द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(९) 'शङ्का तथा स्वरक्षण' के भावों के अनुसार ही सभ्यता की वृद्धि होती है।

शोक से कहना पड़ता है कि महाशय वक्ल ने (i) "सभ्यता" (ii) इतिहास (iii) विज्ञान (iv) नियम (v) शंका तथा स्वरक्षण के भाव" आदि शब्दों के भाव तथा तात्पर्य को पूर्ण तौर पर स्पष्ट करने का यत्न न किया। उसके विचारों की अगम्भीरता तथा अपरिपूर्णता के कारण

उसका सभ्यता इतिहास, आजकल दिन पर दिन कम पढ़ा जाता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि बक्ल के विचारों को लेकर उसके बाद बहुत से विद्वानों ने इतिहास को बड़ी भारी पूर्णता देने का यत्न किया है। अब हम बक्ल के सिद्धान्तों की तथा विचारों की संक्षेपता से आलोचना करनी प्रारम्भ करेंगे।

लेखक

सभ्यता का इतिहास

प्रथम परिच्छेद

मानुषिक ज्ञान के विषयों में इतिहास ही एक ऐसा विषय है जिस पर बहुत कुछ लिखा गया है तथा जो कि बहुत ही सर्वप्रिय है। यह आम तौर पर मनुष्यों का विश्वास है कि 'इतिहास' में लिखने वालों को सफलता भी उतनी ही प्राप्त हुई है जितना कि उन्होंने परिश्रम किया है। यह विश्वास किसी सीमा तक ठीक है। क्योंकि इस सच्चाई को कौन छिपा सकता है कि इतिहास में इस युग में जितना सामान एकत्रित किया गया है उतना सामान कभी भी एकत्रित न किया गया था। जमीनें खोदी गयीं, हजारों वर्ष पूर्व की भाषाओं को समझने का यत्न किया गया, अस्पष्ट ग्रन्थों को लगाया गया, जमीन में गड़े हुए नगरों को निकाला गया, नदियां, पर्वतें, मापे गये। यह क्यों? ये सब इसी लिए कि प्राचीन काल के तथा वर्त्तमान काल के इतिहास को कुछ सहायता मिल सके। यही नहीं, संसार की सभ्यता के इतिहास को समझने के लिए संपत्तिशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि विषयों से पर्याप्त सहायता लेने का यत्न किया गया। परन्तु यहीं पर एक बात बिना कहे हम नहीं रह सकते हैं। प्रत्येक विद्वान् ने

अभी तक राष्ट्रों के अंगभूत व्यक्तियों के इतिहास को तो देखने तथा बनाने का यत्न किया है। परन्तु यह हमारे अभाग्य की बात है कि 'राष्ट्र' के इतिहास पर अभी तक किसी ने भी लिखने का यत्न नहीं किया है। यदि किसी ने किया भी है तो वह कोई बिरला ही पुरुष होगा।

यही नहीं। ऐतिहासिक लोग प्रायः बहुत से आवश्यकीय विषयों से परिचित भी नहीं होते हैं। इस दशा में राष्ट्र के इतिहास को वे समुचित रीति पर लिख ही कैसे सकते हैं। कोई ऐतिहासिक संपतिशास्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ है तो कोई दर्शनशास्त्र से। इसमें सन्देह नहीं है कि १८ वीं सदी के आरम्भ में कुछ एक विद्वानों ने इतिहास का उचित रीति पर अनुशीलन करना प्रारम्भ किया परन्तु वे इतने छोटे हैं। कि उनकी गिनती भी न की जावे तो कोई हानि नहीं है*। परन्तु इतिहास विषयक सामान इतना एकत्रित हो गया है कि इस विषय को भी अन्य वैज्ञानिक विषयों के सदृश उच्च सीमातक पहुँचाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से इस सभ्यता के इतिहास को लिखना प्रारम्भ किया गया है। सभ्यता की दिन पर दिन उन्नति इस बात को प्रत्यक्ष तौर पर सिद्ध कर रही है कि इसमें भी कोई नियम या शैली काम कर रही है। परन्तु आश्चर्य से कहना पड़ता है कि योग्य से योग्य ऐतिहासिक विज्ञान के जन्मदाताओं के मुकाबले में बहुत ही नीचे हैं। कोई भी ऐसा ऐतिहासिक नहीं है जिस

---

*काम्टे ही एक ऐसा ऐतिहासिक है जिसने इतिहास विषय को अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक उच्च दर्जे तक पहुंचाने का यत्न किया है।

की विचार शक्ति में न्यूटन तथा केप्लर से मुकाबला किया जा सके।

सभ्यता के इतिहास को लिखने से पूर्व इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक ही प्रतीत होता है कि "सामाजिक घटनाएं किसी नियम से होती हैं अथवा अकस्मात्"? आकस्मिक तो हो ही नहीं सकती हैं। क्योंकि जब हम किसी भी देश का इतिहास पढ़ते हैं तो हमें पता लगता है कि घटनाओं के भी कारण होते हैं तथा विशेष २ प्रकार की समाज में विशेष प्रकार की घटनाएं होती हैं और वे भी नियम वद्ध अतः इस विषय को छोड़कर हमें यही मानना पड़ता है कि घटनाएं नियम वद्ध हैं तथा उनके नियम का भी पता लगाया जा सकता है। प्रत्येक प्रकार की घटनाओं का निम्न लिखित दो कारणों में से ही किसी एक कारण के साथ सम्बन्ध हो सकता है।

(१) मनो वृत्ति
(२) वाह्य परिस्थिति

मनुष्य के दुःख, सुख, तथा विपत्, संपत् के उपरि लिखित कारण ही हो सकते हैं। कई वार मनुष्य पर प्रभाव जहां वाह्य परिस्थिति द्वारा होता है वहां मनुष्य के मन का प्रभाव वाह्य परिस्थिति पर भी पड़ता है। इस प्रकार प्रकृति तथा मनुष्य के सम्बन्ध से ही संपूर्ण घटनाओं का उद्भव होता है। प्रकृति मनुष्य को चलाती है, मनुष्य अपने अवसर पर प्रकृति को चलाता है। अब प्रश्न केवल यही रह जाता है कि इस विषय को किस विधि से प्रारम्भ किया जावे। जातियों के इतिहास को उनकी आरम्भिक अवस्था से ही

प्रारम्भ करना उचित प्रतीत होता है। क्योंकि जातियां आरम्भ में जब कि असभ्य और अज्ञानी होती हैं उस समय उनकी मानसिक शक्ति तो इतनी प्रबल हो नहीं होती है कि वह प्रकृति पर प्राबल्य प्राप्त कर सके। किन्तु प्रकृति ही उन पर अपना प्रभुत्व दिखाती है तथा उनकी अवस्थाओं के अदलने बदलने में मुख्य भाग लेती है। परन्तु ज्यों २ समय गुजरता है। जातियां अपनी मानसिक शक्ति द्वारा प्राकृतिक बाधाओं तथा विघ्नों को दूर करने का यत्न करती हैं। जितना ही वे प्रकृति पर विजय प्राप्त करती जाती हैं उतना ही उतना वे सभ्य होती जाती हैं। ये सब महान् परिवर्त्तन नियम बद्ध होते हैं। कई एक सामाजिक घटनाएं तो इस सीमा तक नियम बद्ध होती हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। दृष्टान्त के तौर पर **अपराधों** को ही ले लेओ। महाशय केटलेट् (M. Quetelet) का कथन है, –"अपराधों में वह नियमबद्धता पायी जाती है जिसका कुछ कहा नहीं जा सकता है। एक वार जो अपराध जितनी संख्या में होते हैं दूसरी वार भी अपराध उतनी ही संख्या में होते हैं। ऐसे अपराध जो कि पारस्परिक कलह से उत्पन्न होते हैं उनमें भी यही बात पायी जाती है। **खूनों** की संख्या प्रायः प्रतिवर्ष एक सदृश ही रहती है। विचित्रता तो यह है कि जिस साधन से प्रतिवर्ष खून किया जाता है उस साधन की संख्या में भी अन्तर नहीं पड़ता है।" महाशय केटलेट् यूरोप भर में सब से अधिक विद्वान् गणना विभाग में गिना जाता है। उसके कथन पर सन्देह करना वृथा है। इसी विषय में जितनी ही और खोजें की गयी हैं उतना ही उतना रहस्य और भी मालूम पड़ता गया है

आत्मघात के अन्दर भी कोई नियम काम करता प्रतीत होता है। क्योंकि प्रति वर्ष लगभग एक जैसी संख्या ही आत्मघात करती है। इससे हमें जो कुछ मालूम पड़ता है वह यह कि विशेष विशेष प्रकार की सामाजिक अवस्था में आत्मघात की संख्या नियत रहती है। यदि सामाजिक अवस्था में कई वर्षों तक कुछ भी अन्तर न आवे तो नियत संख्या के पुरुष अवश्यमेव प्रतिवर्ष आत्मघात कर लिया करेंगे। उनको इस कार्य से कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती है। लन्डन में प्रति वर्ष २४० तथा २१३ संख्या के लगभग मनुष्य अवश्यमेव आत्मघात कर लेते हैं। जिसकी सच्चाई निम्न लिखित सूची से जानी जा सकती है।

सन्	आत्मघात की संख्या
१८४६	२६६
१८४७	२५६
१८४८	२४७
१८४६	२१३
१८५०	२२६

अपराधों में ही यह विचित्र घटना नहीं मिलती है अपितु विवाहों में भी इंग्लैण्ड के अन्दर यही घटना काम करती हुई देखी गयी है। यह विचित्रता की बात है कि इंग्लैण्ड में विवाहों के साथ गेहूँ के मूल्य का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध देखा गया है। जब गन्दम मंहगी होती है तब विवाह कम होते हैं और जब गन्दम सस्ती होती तब अधिक। सारांश यह

है कि सामाजिक घटनाएं नियम बद्ध हैं। और उनके नियम जाने जा सकते हैं।

सभ्यता के इतिहास का आधार

"सभ्यता के इतिहास" के लिखने में महाशय बक्लने निम्न लिखित सिद्धान्तों को स्वयं सिद्ध मान कर काम किया है। बक्ल की सम्मति में सभ्यता की उत्पतियों का आरम्भ आरम्भ में ४ प्राकृतिक तत्व कारण हैं।

(१) भूमि

(२) भोजन

(३) जल वायु

(४) प्राकृतिक परिस्थिति

इन चारों प्राकृतिक तत्वों में भूमि, भोजन, जल वायु को एक समझना चाहिये तथा प्राकृतिक परिस्थिति को दूसरा। क्योंकि पहिले तीनों सदा इकट्ठे रहते हैं और उनका प्रभाव भी एक ही होता है। चौथे का प्रथम तीनों के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है और उसका प्रभाव भी प्रथम तीनों से सर्वथा भिन्न होता है।

समाज में धन वृद्धि का एकमात्र कारण प्रथम तीनों की उत्तमता है। क्योंकि विना धनवृद्धि के सभ्यता का उत्पन्न होना कठिन होता है। परन्तु प्राकृतिक परिस्थिति समाज के विचारों पर प्रभाव डालती है। प्राकृतिक परिस्थिति दो प्रकार की होती है।

(१) क्रूर तथा अदम्य

(२) मधुर तथा कोमल

यूरोप को छोड़कर संसार के अन्य देशों में प्रथम प्रकार की प्राकृतिक परिस्थिति प्रधान है परन्तु यूरोप में दूसरे

कार की। प्रथम प्रकार की प्राकृतिक परिस्थिति वाले समाज में भाग्यवाद तथा कल्पना शक्ति की प्रधानता होती है। परन्तु दूसरे प्रकार की प्राकृतिक परिस्थिति वाले समाज में आत्मविश्वास तथा विचारशक्ति की प्रबलता अत्यन्त अधिक हो जाती है। महाशय बक्ल ने 'सभ्यता की उत्पत्ति' में जो क्रम तथा कारण बताये हैं उसको अगले पृष्ठ में दिखाया गया है।

सभ्यता की

प्राकृतिक तत्व

(१) भोजन

जलवायु — — भूमि

पूंजी की उत्पत्ति तथा वृद्धि

जल | वायु

भूमि

जल वायु उत्तम (भूमि मध्यम उपजाऊ)

(१) कार्य की निरन्तरता
(२) साहस
(३) अप्रमाद
(४) शासकों के विरुद्ध प्रजा का उठना
(५) शासक तथा शासितों में अभेद भाव
(६) सभ्यता की देर में उत्पत्ति

अनुत्तम (जल वायु मध्यम)

भूमि की उर्वरता मध्यम उपजाऊपना

जनता में धन तथा शक्ति का असमानविभाग

(१) शासकों का प्रजा पर अत्याचार
(२) प्रजा का शासकों के विरुद्ध न उठ सकना
(३) आलस्य
(४) सभ्यता की पहिली उत्पत्ति

उत्पत्ति के कारण

(२) प्राकृतिक परिस्थिति

यूरोप में	एशिया तथा संसार के अन्य प्रदेशों में
कोमल	झूठ
मधुर	कठोर
रम्य	अरम्य
(१) विचार शक्ति की प्रबलता	(१) कल्पनाशक्ति की प्रबलता
(२) प्रकृति पर विजय	(२) प्रकृति को वश में न कर सकना
(३) आत्म विश्वास	(३) भाग्य पर निर्भर करना

द्वितीय परिच्छेद

समाज तथा वैयक्तिक आचार व्यवहार पर प्राकृतिक नियमों का प्रभाव

यदि हम एकान्त में बैठकर विचार करें कि किन २ प्राकृतिक तत्वों का मनुष्य तथा समाज से आचार, व्यवहार और स्वभाव पर विशेषतः प्रभाव पड़ता है तो हमें मालूम पड़ेगा कि ये सब के सब प्राकृतिक तत्व गिनती में चार कहे जा सकते हैं ? वे चारों तत्व इस प्रकार हैं ।

(१) जल वायु (Climate)

(२) भोजन (Food)

(३) भूमि (Soil)

(४) प्राकृतिक परिस्थिति (General Aspect of Nature)

जलवायु, भोजन, भूमि का सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रभाव

इनमें से प्रथम तीन तत्वों का पारस्परिक बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। उनको एक दूसरे से पृथक् करना बड़ा ही कठिन काम है।

चावल की उत्पत्ति के लिए जहां विशेष प्रकार की भूमि की आवश्यकता होती है वहां जल तो उसका जीवन ही है। सारांश यह है कि जलवायु, भोजन तथा भूमि का विचार करते समय एक दूसरे से पृथक् करना सम्भव नहीं है।

धन वृद्धि

जल वायु, भोजन, भूमि का किसी समाज पर सब से प्रथम प्रभाव 'धन वृद्धि" कहा जा

सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि कई एक जातियों ने विज्ञान तथा रसायन आदि की उन्नति से विचित्र विचित्र पदार्थों को बनाकर बहुत ही धन कमाया है। परन्तु यहां पर इस सच्चाई पर कैसे पट्टी डाली जा सकती है कि विद्या, विज्ञान, रसायन आदि सब के सब धन के ही खेल हैं। जब तक उदरपूर्त्ति की किसी व्यक्ति को चिन्ता होवे तब तक उसका ध्यान विद्या, विज्ञान आदि के सीखने की ओर जा ही नहीं सकता है। विद्या, विज्ञान की ओर प्रवृत्ति तभी हुआ करती है जब कि पेट भरा है, भोजन छादन की कुछ भी विशेष चिन्ता न हो। किसी कवि ने ठीक कहा है कि:—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्य रसो न पीयते।
न च्छन्दसाकेन चिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः गुणाः॥

अर्थात् जब भूख लगे तब कोई व्याकरण को तो खा ही नहीं लेता है, जब प्यास लगे तब कोई काव्यरस तो पी ही नहीं लेता है और न किसी ने अब तक वेद के द्वारा अपने ही कुल का उद्धार किया है, इस दशा में धन को ही कमाना चाहिए और सब गुण तो निष्फल निरर्थक होते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे कवि ने कहा है कि "सर्वे गुणाः काञ्चन माश्रयन्ति" अर्थात् सब गुण तो सोने के ऊपर आश्रित हैं। जब तक धन न हो तब तक विद्या आदि कहां से प्राप्त की जा सकती है, मनुष्य का उदर पूर्ण हो तभी वह अपने ध्यान को अन्य कार्यों की ओर लगाने का प्रयत्न कर सकता है, इस

लिए यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि जल वायु, भूमि, भोजन आदि का किसी जाति या समाज पर पहिला पहल प्रभाव धन वृद्धि ही है।

पूंजी की उत्पत्ति

आरम्भिक अवस्था की असभ्य जातियों में विद्या विज्ञान आदि के आरम्भ से पूर्व धन वृद्धि ही होती है। विना धन के निश्चिन्तता कहां और विना निश्चिन्तता के विद्या, विज्ञान आदि की ओर किसी का ध्यान ही कैसे जा सकता है? यदि कोई पुरुष जो कुछ कमावे वही खावे, तो उसके पास पूंजी कुछ भी जमा नहीं हो सकती है। विना पूंजी के उदरपूर्ति की चिन्ता दूर नहीं होती है। परन्तु यदि कोई पुरुष जितना खावे उससे अधिक कमावे तो उसके पास बहुत सी पूंजी जमा हो सकती है। और वह पूंजी धन विद्या के सिद्धान्तों के अनुसार उस पुरुष के धन को और भी अधिक बढ़ा देती है। इसी अवस्था में प्रथम प्रथम किसी समाज या जाति के अन्दर ऐसे पुरुषों की सत्ता होने लगती है जो कि अपनी पूंजी के सहारे उदरपूर्ति की चिन्ता से मुक्त होकर अन्य प्रकार की बातों में अपना समय देने में समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि अन्य सब प्रकार की सामाजिक उन्नतियों में धन वृद्धि को ही प्रथम रखना चाहिये। क्योंकि विना धन वृद्धि के अन्य किसी प्रकार की विद्या विज्ञान सम्बन्धी विषयों में किसी भी समाज की प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती है। असभ्य अज्ञानी जातियों तथा समाजों में धन वृद्धि एक मात्र उनके देश की प्राकृतिक विशेषताओं पर निर्भर किया करती है। इसमें सन्देह नहीं

है कि धन वृद्धि के अनन्तर अन्य कारणों भी जाति की सामाजिक उन्नति के करने में अग्रसर हो जाते हैं। परन्तु जब तक वे कारणों अपना काम नहीं प्रारम्भ करते हैं, तब तक धन वृद्धि असभ्य अज्ञानी जातियों में दो बातों पर निर्भर किया करती है।

(१) श्रम (२) प्रकृति की उदारता

प्रकृतिकी उदारता

श्रम की उत्तम अनुत्तम होना मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत कुछ निर्भर है। परन्तु स्वास्थ्य भी तो प्राकृतिक परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है। यदि किसी स्थान की जलवायु ठीक नहीं है, वहां के पुरुषों का अस्वस्थ युक्त होना स्वभाविक ही है। इस प्रकार जहां श्रम की उत्तमता उत्तम प्राकृतिक परिस्थिति पर निर्भर करती है वहां श्रम का फल भी उसी से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है बञ्जर भूमि पर कितना ही श्रम क्यों न किया जावे फल का न प्राप्त होना स्वभाविक ही है। जलवायु का मनुष्य के श्रम पर स्वास्थ्य द्वारा जो प्रभाव पड़ता है यदि उसको ध्यान में न भी रखा जावे तो भी मनुष्य के श्रम पर वह सीधे तौर पर दो प्रभाव डालता है जिनको भुलाया नहीं जा सकता है।

(१) विशेष २ कार्य के लिए अयोग्यता

(२) कार्य की अनिरन्तरता

अत्यन्त ऊष्ण प्रदेशों में बहुत से कार्य नहीं किये जा सकते हैं, जो कि मध्यम ऊष्ण देशों में सहज से ही सम्पादित हो सकते हैं। इसलिए जलवायु का प्रथम प्रभाव तो

विशेष विशेष कार्यों के लिए किसी समाज को अयोग्य कर देना स्पष्ट ही हो गया। दूसरा प्रभाव कार्य को अनिरन्तरता भी स्पष्ट ही है। ध्रुव के निकटवर्त्ती देशों के निवासियों को बहुत से समय तक अपना कार्य बन्द करना पड़ जाता है। क्योंकि वहां उन्हें प्रकाश पर्याप्त तौर पर नहीं मिलता है। और यही कारण है कि अब तक ध्रुव के निकटवर्त्ती प्रदेशों के लोगों ने वह कार्य करके नहीं दिखलाये जिसके लिए कि मध्यम ऊष्ण प्रदेशों के लोग अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जलवायु का किसी समाज या जाति के स्वभाव पर जो प्रभाव होता है उसको भी ध्यान में रख ही लेना चाहिये। ध्रुव प्रदेश के व्यक्तियों का 'कार्य की अनिरन्तरता के कारण' स्वभाव आलस्यमय हो जाता है। उन्हे बहुत समय तक घर में बैठना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत कार्य करने की ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं रहती है। दृष्टान्त के तौर पर स्वीडन तथा नार्वे, स्पेन तथा पुर्त्तगाल को लीजिये। इन चारों देशों की भूमियां कृषि के अत्यन्त योग्य हैं। स्पेन तथा पुर्तगाल में जहां ऊष्णता अधिक होने से श्रम में अनिरन्तरता होती है वहां स्वीडन तथा नार्वे में शीत की अधिकता के कारण इस समानता का परिणाम यह है कि इन चारों जातियों के राज्य नियम, रीति रिवाज, धर्म आदि के सर्वथा भिन्न होते हुए भी स्वभाव में वह सदृशता पायी जाती है कि जिसे देखते ही चकित हो जाना पड़ता है। चारों देशों की जातियों के स्वभाव में अस्थिरता तथा अनियमता कूट कूट कर भरी हुई है। यह स्वभाव उनको उनकी जलवायु के कारण

ही मिला है। यह इतना स्पष्ट है कि इस पर बहुत लिखना व्यर्थ है।

प्राकृतिक तत्वों का किसी समाज या जाति की धन वृद्धि में जो प्रभाव होता है वह दिखाया जा चुका है। अन्य कारणें भी धन वृद्धि किया करते हैं। और शायद किसी सीमा तक प्राकृतिक तत्वों की अपेक्षा अधिक ही। परन्तु वह आरम्भिक जातियों में नहीं अपितु उन्नत सभ्य जातियों में ही। इस विषय को हम आगे चलकर स्वयं ही स्पष्ट करेंगे। धन के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि आरम्भिक जातियों ने वहीं पर विशेष उन्नति की, जहां पर कि जलवायु तथा भूमि उत्तम थी। श्रम की निरन्तरता जहां जलवायु पर आश्रित है वहां श्रम का फल उचित या अनुचित मिलना भूमि पर ही निर्भर करता है। संसार के इतिहास की छान बीन कर डालो। परन्तु कहीं पर कोई ऐसी जाति नहीं मिलेगी जिसने उपरि वर्णित प्राकृतिक तत्वों के सहारे के विना ही उन्नति तथा धन वृद्धि की हो। प्राकृतिक तत्वों का सभ्यता के उदय में कहां तक भाग है यदि इसे देखना हो तो एक वार असभ्य मुग़लों के इतिहास पर दृष्टि डालो। मुग़ल तथा तातीरी लोगों ने चीन, भारत, तथा फारस में अपने उपनिवेश बनाये। इन उपनिवेशों में उन्होंने जिस सभ्यता की वृद्धि की वह आश्चर्यकर प्रतीत होती है। जब कि हम उनकी मातृभूमि के निवासियों पर एक वार दृष्टि डालते हैं जो कि पूर्ववत् ही असभ्य बने रहे हैं। इसी प्रकार अरब निवासी अपनी मातृभूमि कृषि के अयोग्य होने से किसी प्रकार की विशेष उन्नति वहां पर न

कर सके। परन्तु ज्योंही सातवीं सदी में फारस का, आठवीं सदी में स्पेन का, कुछ उत्तम भाग और तथा नौवीं सदी में पञ्जाब तथा भारत का उन असभ्य अरब निवासियों ने विजय किया उनके स्वभाव तथा आचार व्यवहार में बड़ा भारी परिवर्त्तन आ गया। अरब में जहां वे लोग एक फिरन्दर जाति के रूप में असभ्य के असभ्य बने रहे वहां उन्होंने ही नवीन नवीन उपनिवेशों में वह सभ्यता के चमत्कार युक्त कार्य कर दिखलाये जिनको कि देखने के लिए आज भी संसार के लोग दिल्ली तथा बगदाद में लम्बी लम्बी यात्राएं करके पहुंचते हैं। इसी सच्चाई को अफ्रिका महाद्वीप का एक भाग मिश्र भी सिद्ध करता है। सम्पूर्ण अफ्रिका असभ्यों की निवास भूमि बता रहा है परन्तु सभ्यता केवल यदि फैली तो केवल मिश्र में ही। यह क्यों? इसका कारण यह है कि मिश्र देश की भूमि को नील नदी जहां सींचती है वहां उस की भूमि उपजाऊ, तथा जलवायु न विशेष ऊष्ण और न विशेष शीत है इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की तरह मिश्र देश को भी सभ्यता ने अपनी निवास भूमि बनाया। अफ्रिका के अन्य प्रदेशों में प्राकृतिक तत्व विपरीत थे अतः वहां सभ्यता का उदय न हो सका और वहां के निवासी पूर्ववत् असभ्य के असभ्य ही बने रहे। इसी प्रकार विचार करते करते यदि हम यूरोप तथा एशिया को ले लेंवे तो हमें पता लगेगा कि एशिया में सभ्यता को उत्पन्न करने में जहां भूमि की उर्वरता मुख्य है वहां यूरोप में जलवायु ही मुख्य कही जासकती है। इन दोनों प्राकृतिक तत्वों के विषय में हम पूर्व ही विस्तार के तौर पर लिख चुके हैं कि भूमि की उर्वरता का

प्रभाव जहां फल प्राप्ति से संम्बन्ध है वहां जलवायु का कार्य की निरन्तरता तथा अनिवरता से। प्राकृतिक तत्वों की उदारता का प्रभाव धनवृद्धि ही सभ्यता के उदय में एक कारण है। परन्तु किस देश की सभ्यता कैसी होगी इसका अन्य कारणों तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों से भी संम्बन्ध है। एशिया तथा अफ्रिका में भूमि की उर्वरता से शीघ्र ही फल की प्राप्ति हो जाती है। यूरोप में जलवायु के उत्तम होने से श्रम निरन्तर किया जा सकता है। भूमि की उर्वरता का जलवायु की अपेक्षा सभ्यता के आरम्भ में अधिक भाग है। यही कारण है कि एशिया तथा मिश्र देश में यूरोप की अपेक्षा सभ्यता का आरम्भ बहुत ही पहले से हो गया। परन्तु वह सभ्यता स्थिर नहीं कही जा सकती है जिसका निर्भर बहुत कुछ प्रकृति की उदारता पर हो। यह क्यों? यह इसी लिए की प्रकृति की उदारता परिमित है। और उसकी परिमिति के कारण उस पर निर्भर करने वाली सभ्यता का अस्थिर हो जाना स्वभाविक ही प्रतीत होता है। परन्तु यूरोप की सभ्यता ऐसी नहीं समझी जा सकती है। क्योंकि उसकी उत्पत्ति में जलवायु का विशेष भाग है जिसका कि सम्बन्ध श्रम से है। मनुष्य जितना श्रम वहां पर करे उसके अनुपात से ही फल मिलना ठहरा। परन्तु हम लोगों को चिरकाल के अनुभव से यह पता लगा है कि मनुष्य की शक्ति बहुत कुछ अपरिमित कही जा सकती है। अभी तक हमें किसी सीमा का पता नहीं लगा है। जिस पर कि मनुष्य की शक्ति का अन्तनिर्दिष्ट किया जा सके। इस प्रकार यूरोप की सभ्यता के उदय में जहां मनुष्य का श्रम ही

मुख्यतः कारण है वहां एशिया की सभ्यता के उदय में प्रकृति की उदारता ही मुख्य कारण कहा जा सकता है। इस दशा में यूरोप की सभ्यता का स्थिर तथा उन्नतिशील होना स्वभाविक ही है जब कि .उसके आरम्भ करने वाले कारणों में मनुष्य के श्रम तथा शक्ति जैसे कारण विद्यमान हों। परन्तु एशिया की सभ्यता का आरम्भ प्रकृति की उदारता से है जो कि बहुत कुछ परिमित है। सारांश यह है कि एशिया तथा यूरोप में प्राकृतिक तत्वों के स्वभाव से सब से पहले पहल धन वृद्धि ही होती है।

परन्तु दोनों ही देशों में "धन वृद्धि" के उत्पन्न करने वाले कारणों में भिन्नता है अतः कार्य के गुणों में भिन्नता का हो जाना स्वभाविक ही है।

भृत्ति, लाभ, ब्याज की उत्पत्ति

धनवृद्धि तथा पूंजी की उत्पत्ति के अनन्तर यह प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न हो जाता है कि उसका विभाग भिन्न समाजों तथा जातियों में किस किस प्रकार होता है ? उन्नत सभ्य जातियों में धन विभाग के कारण अत्यन्त विषम हैं। अतः उनका यहां पर न उल्लेख करना ही आवश्यक प्रतीत होता है। परन्तु अवनत असभ्य जातियों में धन विभाग भी धनवृद्धि के सदृश एक मात्र प्राकृतिक तत्वों पर ही निर्भर करता है। ये प्राकृतिक नियम इतने प्रबल हैं कि इनके कारण ही अच्छी से अच्छी भूमि पर के निवासियों की बहुसंख्या अत्यन्त दरिद्रता के जीवन को व्यतीत करती रही हैं। यह लिखना व्यर्थ ही प्रतीत होता है कि धन एक प्रकार की शक्ति है। और जब हम धन विभाग के नियमों के अन्वेषण पर तत्पर हों तो हमें

भिन्न भिन्न शक्तियों के विभाग का नियम जानना पड़े, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं मालूम पड़ती है। धन विभाग के नियमों को जानने से पूर्व यह कहना अनुचित नहीं होगा कि समाज में दो प्रकार के व्यक्तियों के पास धन हो सकता है। उन दोनों प्रकार के व्यक्ति श्रमी (श्रम करने वाला) तथा अश्रमी (श्रम न करने वाले) के शब्द से कहे जा सकते हैं। असभ्य जातियों में पूंजी की उत्पत्ति में श्रमी तथा अश्रमी दोनों का ही भाग होता है। अश्रमी जहां श्रमियों से उचित-रीति पर काम करवाता है वहां श्रमी ही अपने बाहुबल से सम्पूर्ण पूंजी को एक प्रकार से उत्पन्न करता हुआ कहा जा सकता है। अश्रमी को आगे चल कर हम प्रबन्धकर्त्ता के नाम से लिखेगें क्योंकि यद्यपि वह श्रमियों के सदृश बाहु-बल से काम नहीं करता है तथापि काम करवाने में उसका जो दिमाग लगता है उसे गौण न समझना चाहिये। पूंजी की उत्पत्ति में बाहुशक्ति तथा मानसिक शक्ति दोनों का ही पर्याप्त भाग हो जाता है। अतः पूंजी का दोनों में बटना आवश्यक ही है। प्रबन्धकर्त्ता को जो पूंजी मिलती है उसे "लाभ" कहा जाता है और जो श्रमियों को पूंजी मिलती है उसे "भृति" या वेतन शब्द से व्यवहृत करते हैं पूंजी की उत्पत्ति के बाद आर-म्भिक जातियों में एक नवीन श्रेणी का उदय होने लगता है जिनका कि काम पूंजी को अपने पास जमा करना हो जाता है। इस श्रेणी के लोगों को पूंजीपति कहा जा सकता है।

क्योंकि ये लोग पूंजी को एकत्रित कर अपना जीवन निर्वाह इसीके द्वारा किया करते हैं। पूंजीपति दूसरे व्यक्तियों को उधार पर अपनी पूंजी देकर उसके बदले कुछ

रुपया लेना प्रारम्भ करते हैं। और वह इस लिए कि उन्हें पूंजी के एकत्रित करने में पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ता है। अतः उस पूंजी को किसी व्यक्ति को वे मुफ्त में ही कैसे दे सकते हैं जब तक कि उनको उसके बदले में कुछ भी न मिले। इस प्रकार उधार पर रुपये को देने में जो आमदनी होती है उसे सभ्य समाज में ब्याज नाम से पुकारा जाता है। परन्तु जातियों के जिस समय की अवस्था पर हम अभी लिख रहे हैं उस समय उनमें तृतीय श्रेणी के व्यक्ति पूंजीपतियों का उदय नहीं हुआ होता है। क्योंकि उनका उदय तभी हो सकता है। जब कि कई एक व्यक्तियों के पास पर्याप्त धन इकट्ठा हो जावे। जिस विषय पर अभी विचार चल रहा है वह यह है कि किन नियमों से किसी व्यक्ति के पास अधिक पूंजी एकत्रित हो जाती है जब कि बहुत से व्यक्ति दरिद्रता की अपार निधि में गोते ही खाते रह जाते हैं।

श्रम का मूल्य भृति या वेतन है, यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। अतः भृति के भी वह नियम है जो कि किसी बाज़ारू पदार्थ के मूल्य के। यदि श्रमियों की उपलब्धि उनकी मांग से बढ़जावे तो भृति कम हो जावेगी और यदि श्रमियों की मांग उनकी उपलब्धि से अधिक हो जावे तो भृति का बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। कल्पना करो कि किसी देश में कुछ पूंजी श्रमियों तथा पूंजीपतियों के बीच में बांटी जाती है। श्रमियों की संख्या ज्यों ज्यों बढ़ेगी त्यों त्यों उनको अपने परिश्रम का बदला पूर्वापेक्षा कम मिलेगा। और ज्यों ज्यों उनकी संख्या घटेगी त्यों त्यों उनको अपने परिश्रम का बदला अधिक

मिलेगा*। प्रश्न यह उठता है कि वह कौनसा नियम है जिसके कारण श्रमियों की संख्या घटती बढ़ती है?। इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि भोजन ही एक ऐसा है जिसके कारण यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें तो श्रमियों की संख्या अधिक वा कम होती है। मध्यम उष्ण प्रदेशों में भोजन बहुतायत से होता है परिणाम उसका यह है कि प्राचीन काल में उन देशों की जन संख्या अधिक थी तथा वहां श्रमियों की भृति भी बहुत ही अल्प थी। दृष्टान्त के तौर पर अमेरिका, एशिया, और अफ्रिका, को ले लीजिए। सारी की सारी सभ्यता का उदय उन्हीं स्थानों में हुआ था जहां पर कि भूमि उपजाऊ थी तथा उष्णता मध्यम थी। परन्तु साथ ही उन देशों में भृति भी कम ही रही है। क्योंकि वहां की जन संख्या बहुत अधिक थी। यूरोप में इससे विपरीत रहा है। यूरोप में सभ्यता का उदय मध्यम शीत प्रदेशों में हुआ था। वहां पर भोजन प्राप्ति में भूमि की अपेक्षा श्रम का अधिक भाग था। परिणाम इसका यह हुआ कि जहां यूरोप में भोजन बहुत सस्ता न हुआ वहां भृति भी श्रमियों की अत्यन्त अधिक ही रही। सम्पूर्ण यूरोप में आयरलैण्ड ही एक ऐसा देश है जहां पर कि भोजन प्राप्ति के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता नहीं है तथा जहां पर भोजन भूमि की उर्वरता के कारण भार-

---

* यह 'भृतिकोष सिद्धान्त (Wagefund theory) के अनुसार वकूने लिखा है अतः पूर्ण सत्य नहीं है। "श्रम को बाजरू पदार्थ मानना गलती करना है" बहुत से सम्पत्तिशास्त्रज्ञों की आज कल यही सम्मति है।

(लेखक)

तांबे की तरह बहुत उत्पन्न हो जाता है। आयरलैण्ड में आलु बहुतायत से होता है। यही आयरिषों का भोजन है। आलु तथा गेहूँ में एक बड़ा भारी अन्तर है। एक एकड़ पर बोया हुआ गेहूँ जितने मनुष्यों को पाल सकती है। आलु उनसे दुगने को। इस प्रकार गेहूँ उत्पन्न करने वाले देशों की अपेक्षा आयरलैण्ड की जन संख्या का दुगनी रफ़ार से बढ़ना स्वाभाविक ही है। आयरलैण्ड में यही होता भी रहा है। १०० या २०० वर्ष से पूर्व आयरलैण्ड में जन संख्या की वृद्धि जहां ३% थी वहां इंगलैण्ड में केवल १ $\frac{१}{२}$ ही परन्तु कुछ समय से आयरिष अपने देश को छोड़ कर अन्य देशों में बस रहे हैं तथा वहां पर कुछ एक राजनैतिक कारणों से दशा भी सर्वथा बदल गयी है। अतः अब वहां जन संख्या वृद्धि की भी वह दशा नहीं है। आज कल इङ्गलैण्ड की जन संख्या भी शीघ्रता से बढ़ने लग गयी है। अतः वहां पर भी श्रमियों को अपने श्रम का बदला पूर्ण तौर पर नहीं मिलता है। आयरलैण्ड की कुछ ही काल में जो अधोगति हुई है उसमें इंगलैण्ड के शासन का बड़ाभारी हाथ है। यह कलंक का टीका इंगलैण्ड के माथे से कभी भी नहीं हटाया जा सकता है। आयरलैण्ड में भृति की कमी का जो कारण है उसका सम्बन्ध सस्ते भोजन से है। सस्ते भोजन के कारण वहां की जन संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। तथा वहां के श्रमियों की भृति बहुत ही अधिक न्यून हो गयी है। एक दर्शक का कथन है कि आयरलैण्ड में एक सौ वर्ष पूर्व जहां प्रत्येक श्रमी की ।) भृति थी वहां श्रमियों को

इस भृति के भी प्रति दिन प्राप्त होने की आशा न थी। यूरोप में सब से अधिक आजाऊ भूमि वाले देश को जो दशा थी वह पहले लिखी जा चुकी।

भारत वर्ष

अब हम भारतवर्ष पर भी इस विषय की स्पष्टता के लिए एक दृष्टि डालेगें। एशिया में भारतवर्ष एक ऐसा देश है जिसमें प्राचीन काल से सभ्यता चली आ रही है। भारतवर्ष की भूमि जहां उपजाऊ है वहां ऊष्णता भी साधारण तौर पर मध्यम कही जा सकती है। प्रकृति की इस उदारता के कारण भारतवर्ष में भी धन का असमान विभाग है जैसा कि अन्य देशों में है। भारतवर्ष में जहां कुछ एक लोग अतिधनी हैं वहां कुछ लोग दरिद्रता की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए कहे जा सकते हैं। जो अधिक परिश्रम करते हैं उनको कुल मिलाकर दिन में ।) आने या ।-) आने मिल जाते हैं और जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते हैं उनको इतना अधिक मिलता है कि उनके प्रति दिन की आमदनी का हिसाब तक करना कठिन है। धन विभाग की यह दशा भारत में आज कल ही उत्पन्न हुई है यह कहना अति कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि इन्हीं बातों से भारत का प्राचीन साहित्य परिपूर्ण है। भारत में भृति न्यून है यह इतना स्पष्ट है कि इस पर बहुत लिखना वृथा है। यह इससे भी स्पष्ट है कि भारतवर्ष में लगान तथा व्याज दोनों ही अधिक हैं। सम्पत्तिशास्त्र से यह सिद्ध है कि जिस देश में लगान तथा व्याज अधिक हुआ करता है उस देश में भृति थोड़ी हुआ करती है। मनुस्मृति को यदि नौ सौ बी० सी० समय मान लेवें तो भी उस समय की दशा का बहुत

कुछ परिज्ञान हो सकता है। मनुस्मृति के काल में ब्याज पन्द्रह से साठ तक लिया जाता था। विचित्रता तो यह है कि १८१० तक भारत में ३६ से ६० तक ब्याज की मात्रा रही है। यह तो हुआ ब्याज। अब हम लगान पर एक दृष्टि डालेंगे। भिन्न भिन्न देशों में लगान की मात्रा इस प्रकार ली जाती थी:—

देश	लगान
इङ्गलैण्ड या स्काटलैण्ड	कुल उपज का १/४
फ्रांस	कुल उपज का १/३
उत्तर अमेरिका	नाम मात्र (बहुत ही थोड़ा)
भारतवर्ष	कुल उपज का १/२ तथा इससे भी अधिक

उपरि लिखित सूची से प्रतीत होगा कि भारत में अन्य देशों की अपेक्षा लगान की मात्रा अधिक है। यदि राज्य इसी मात्रा को लेता होता तब भी कोई बात थी परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि कई स्थानों में लगान की मात्रा इस सीमा तक अधिक ली जाती है कि बेचारे कृषक के पास अगली फसल को बोने के लिए बीज तक नहीं रहता है तथा उसे अपना जीवन ऋण पर ही काटना पड़ता है। जाति की पूंजी में से लाभ ब्याज, लगान को ऊपर श्रेणी के लोग निकाल लेते हैं तथा जो कुछ बचता है वह श्रमियों को मिलता है। जहां लाभ ब्याज, लगान में पूंजी का बहुत सा भाग धनियों

द्वारा निकाल लिया जाता है वहां बची हुई थोड़ी सी पूंजी को श्रमियों की अनन्त संख्या आपस में बांटती है। इस दशा में यदि श्रमियों को भृति के रूप में बहुत ही थोड़ा मिले त इसमें आश्चर्य की ही क्या बात है। भोजन के सस्ते होने का जो प्रभाव हुआ वह दिखाया जा चुका। इसी के कारण अन्य जो बुराइयां समाज में उत्पन्न हुईं वे भी ध्यान देने योग्य हैं।

अन्य देशों के सदृश भारत में भी दरिद्रता का परिणाम घृणा तथा धन का परिणाम शक्ति हुआ है। धन की असमानता का प्रभाव किसी देश पर शक्ति की असमानता का होना स्वाभाविक ही है। ऐसा ही कोई देश होगा जिसमें कि शक्ति का व्यक्तियों ने दुरुपयोग न किया हो। भारत में जहां प्राकृतिक दशा ने जनता में धन का असमान विभाग किया वहां शक्ति के असमान विभाग से जो जो हानियां भारत को पहुँची हैं वह किसी इतिहासज्ञ से छिपी नहीं हैं। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए उनमें से कुछ एक का उल्लेख हम यहां पर भी कर ही देते हैं। भारत में शूद्रों के ऊपर जो कुछ भी अत्याचार किये गये हैं तथा हो रहे हैं वे अत्यन्त शोक जनक हैं। भारत के इतिहास में कोई समय था जब कि शूद्रों के वेद मन्त्र के सुनते ही उनके कान में रांगा भरवा दिया जाता था तथा ब्राह्मण को गाली देते ही जिह्वा कटवा दी जाती थी। दक्षिण में अब तक शूद्रों को कई एक सड़कों पर चलने नहीं दिया जाता है। सारांश यह कि शूद्रों के ऊपर जो ऊपर लिखित श्रेणी के लोगों ने जो अत्याचार किये हैं वह अब भी भारतीय जनता को सभ्य देशों के सन्मुख कलङ्कित

कर रहे हैं। यहां पर यह न समझना चाहिए कि यह दशा एक मात्र भारत ही की है। संसार के सभी देशों में इसी प्रकार की अवस्था विद्यमान रही है जहां पर भी प्रकृति ने इस प्रकार की उदारता प्रकट की है। भारत के सदृश मध्यम ऊष्ण देशों की जनता में दो ही प्रकार के स्वभाव दिखायी पड़ते हैं। एक तो हुकूमत करना द्वितीय हुकूमत पर अन्धी तौर पर चलना। इतिहास में यह एक सार्वभौम सत्य है कि भारत के सदृश मध्यम ऊष्ण प्रदेशों की प्रजाओं ने कभी भी अपने शासकों के प्रति सर्व सम्मिलित आक्रान्ति नहीं की है और नीच लोगों ने अपने उपरकी श्रेणी के लोगों के अत्याचार से अपने आपको स्वतन्त्र करने का यत्न ही किया है। इन उपजाऊ उत्तम जलवायु युक्त देशों में बहुत से परिवर्त्तन होते रहे हैं परन्तु विचित्रता यह है कि उन सब परिवर्त्तनों का आरम्भ ऊपर से नीचे की ओर ही होता रहा है न कि नीचे से ऊपर की ओर। भारत में राज्य के अन्दर परिवर्त्तन हुए, धर्म में परिवर्त्तन हुए, परन्तु जनता में कोई राजनैतिक आक्रान्ति नहीं आयी। परन्तु यूरोप की अवस्था चिरकाल से ही इससे विचित्र चली आयी है। यूरोप में प्रजा सत्तात्मका राज्य का प्रारम्भ होता है। जानता पारस्परिक असमानता को मिटाने में सन्नद्ध हो जाती हैं तथा बहुत सी आक्रान्तियों के द्वारा किसी सीमातक असमानता को मिटा भी देती है। धनकी असमानता को दूर करने के लिए अब तक यूरोप में बराबर यत्न हो रहा है। सारांश यह है कि एक ऐसी सभ्यता की जन्म भूमि यूरोप को ही कहा जा सकता है जिसमें की सामाजिक संस्था

को एक ऊंच रूप दिया है। तथा जिसमें की अपने अंग-भूत व्यक्तियों की पारस्परिक असमानता को मिटाने का यत्न किया गया है। भारत के विषय में पूर्व लिखित सिद्धान्तों की सत्यता को पूर्ण तौर पर प्रमाणित किया जा चुका है। अब हम **मिश्रदेश** के ऊपर एक दृष्टि डालेंगे। जिससे कि वहां से भी हमें कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त हो सके।

मिश्र मिश्रदेश में भारत के सदृश ही उपजाऊ भूमि तथा जलवायु उष्ण है। इस कारण प्राकृतिक तत्वों का दोनों ही देशों पर एक जैसा प्रभाव पड़ा तथा परिणाम भी एक ही जैसा हुआ। दोनों ही देशों में अपने अपने जातीय खाद्य पदार्थ सस्ते हैं तथा बहुतायत से होते हैं। अतः जहां श्रमियों की संख्या का अधिक होना आवश्यक हुआ वहां धन तथा शक्ति की असमानता का होना भी स्वभाविक ही था। इन सब घटनाओं का भारत पर क्या क्या प्रभाव पड़ा यह दिखाया जा चुका है। अब हम इसका प्रभाव मिश्र-देश पर क्या हुआ इसको दिखाने का यत्न करेंगे। मिश्रदेश में सब से उपजाऊ प्रदेश सैय्यद (Said) है। इसी स्थान पर प्राचीन शिल्प तथा विज्ञान की संपूर्ण निशानियां विद्यामान हैं। इसी स्थान पर धौरा' (Dhourra) नामी खाद्य पदार्थ बहुतायत से होता है। अफ्रीका महाप्रदेश में ऊष्ण जल वायु होने के कारण जहां जन संख्या बढ़नी चाहिए थी। वहां भूमि के अनुपजाऊ होने से वह न बढ़ सकी। परन्तु नील नदी के तटवर्त्ती प्रदेशों के साथ यह बात न थी वहां की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। जलवायु भी जन संख्या वृद्धि के बहुत कुछ

अनुकूल थी। सब से विचित्र बात यह थी कि वहां के वासी बहुत भोजन भी नहीं करते थे। इस दशा में वहां की जन संख्या अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ती रही थी। मिश्र देश में उष्णता पर्याप्त होती है। अतः वहां के निवासियों को शीत प्रदेश के मनुष्यों के सदृश वस्त्रों की बहुत चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। डायोडोरस सीकुलस का कथन है कि मिश्र देश में एक बालक को युवावस्था तक पालने में माता पिताओं का तेरह रुपये से अधिक खर्च नहीं होता है और यही कारण है जिससे कि उस प्रदेश की जन संख्या बहुत ही अधिक है। हेरीडोटसने एक स्थान पर लिखा था। कि अमासिस (Amasis) के शासन काल में बीस हज़ार नगर मिश्र देश में थे। इस बात की सत्यता को डायोडोरस सिकुलस भी प्रकट करता है जब कि वह लिखता है कि मिश्र देश प्राचीन काल में खूब घना बसा हुआ था। तथा उसमें अठारह हज़ार से उपर बड़े बड़े नगर थे। श्रमियों की दशा मिश्र देश में प्राचीन काल के अन्दर क्या थी? यदि इसका कुछ भी पता लेना हो तो वहां के प्राचीन विशाल भवनों को ही ले लीजिये उन निरर्थक, विशाल भवनों को देखते ही मालूम पड़ जाता है कि प्राचीन काल में मिश्री शासकों में कितनी क्रूरता थी तथा जनता में दासता। स्वतन्त्र जाति के पुरुष कभी भी अपने उन रुपयों को इतने निरर्थक कार्यों में न फेंकने देते जिन रुपयों को उन्होंने अपने पसीने को बहा-कर कमाया हो। परन्तु मिश्र तथा भारत में इन बातों का किस को ध्यान था। मिश्र में तो ऊपरलिखित श्रेणी के लोगों की ही प्रधानता थी। दरिद्र शिल्पी प्रजा का क्या साहस हो

सकता है--कि वह शासक श्रेणी के कार्यों में दखल तक भी दे सके। इस प्रकार के पुरुष यदि राजनैतिक कार्यों में हस्ताक्षेप करें तो उन्हें दण्ड दिया जाता था। संपूर्ण प्रजा शासकों की दृष्टि में पशुओं से बदतर थी। जो कुछ प्रजा का कर्त्तव्य था वह यह की वह निरन्तर श्रम का काम करती रहे। घरेलू नोकरों को बेंतों से पीटा जाता था। सब से अधिक शोकजनक तो यह बात थी कि संपूर्ण जाति शासकों की इच्छा के आधीन थी। और यही कारण था कि मिश्र देश में विशाल भवने (पीरामिड) बनाये जा सकें जो कि कई एक यात्रियों की दृष्टि में सभ्यता के चिन्ह हैं। वास्तव में जिन्हें हमारी सम्मति में असभ्यता का चिन्ह समझना चाहिए। इस प्रकार की जातियों का मनुष्य समाज के कष्टों की ओर विशेष ध्यान करना असभ्य ही प्रतीत होता है। मिश्र में शासक श्रेणी के जन जिस बेपरवाही तथा क्रूरता से मनुष्यों के जीवन तथा श्रम से व्यवहार करते थे उसे सोचते ही हमें चकित हो जाना पड़ता है। मनुष्यों का कितना श्रम व्यर्थ को ही नष्ट किया गया होगा जब कि विशाल भवनें (पिरामिड्ज़) बनाये गये होंगे। कहा जाता है कि ऐलीफ़न्टाइन्स (Elephentins) से सैय्यस (Sais) या लालसागर तक केवल एक ही पत्थर के लाने में २००० मनुष्य लगे थे। एक एक पिरमिड् के बनाने में लगभग साठ हजार मनुष्य बीस वर्ष तक लगे रहे थे। इस विषय को यहीं पर छोड़ते हुए यदि हम पेरू, मैक्सिको तथा उत्तरी मध्य अमेरिका पर दृष्टि डालें तो वहां पर भी वेही घटनाएं प्रत्यक्ष होती हैं जो कि हमें भारत तथा मिश्र में प्रत्यक्ष होती

रही हैं। अमेरिका के महाद्वीप पर दृष्टि डालने से "प्राकृतिक तत्वों का सभ्यता की उत्पत्ति में कहां तक भाग है" यह बहुत कुछ स्पष्ट हो सकता है। अतः अब कुछ ध्यान उसी ओर देने का यत्न किया जावेगा।

महाद्वीप अमेरिका महा द्वीप की भौगोलिक अवस्था पर यदि दृष्टि डाली जाय तो प्रतीत होगा की वहां की सम्पूर्ण बड़ी नदियां प्रायः पूर्वीय किनारे पर ही हैं, दक्षिणीय किनारे पर एक भी नहीं है। यह क्यों ? इसका उत्तर तो यहां पर देना कठिन है। परन्तु यह घटना आश्चर्यप्रद अवश्यमेव है। संभव है कि इसका कारण भूगर्भ विद्या से बहुत कुछ सम्बन्ध हो। पूर्वीय किनारे पर बहुत सी नदियों के होने से वहां की भूमि में नमी बहुत ही अधिक है, जो जो नदियां उस किनारे पर बहकर आती हैं उनके नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) निग्रो (Negro)
(२) लाप्लेटा (Loplata)
(३) सन्फ्रान्सिसको (San-Francisco)
(४) अमेजान (Omagon)
(५) ओरिनोको (Orinoco)
(६) मिसिस्सपी (Missisippi)
(७) अल्बामा (Alabama)
(८) सेन्टजोन्ह (Saint john)
(९) पोटोमक (Potomac)
(१०) सुसकहन्नाह (Susquahannah)
(११) देलावेयर (Dala ware)

(१२) हड्सन (Hudson)
(१३) सेन्ट लारन्स (Sint Lowrence)

आरेगान (Orgon) नदी ही एक ऐसी नदी है जो कि उत्तर अमेरिका में पश्चिमी किनारे की ओर है। दक्षिणीय अमेरिका में तो एक भी नदी पश्चिमीय किनारे की ओर नहीं है ॥

उत्तरीय अमेरिका

उत्तरीय अमेरिका में नदी जहां पूर्वीय किनारे पर है वहां उष्णता पश्चिमीय किनारे ही पर है। इस प्रकार एक किनारे को जहां उत्पादकता के लिए उष्णता की आवश्यकता है। वहां दूसरे किनारे को नमीं की आवश्यकता है। क्योंकि उष्णता तो उसमें प्रकृति की ओर से ही विद्यमान है। इस प्रकार इस विपरीत दशा के कारण वहां के आदि निवासी सभ्यता के उत्पन्न करने में सर्वथा ही असमर्थ हो गये। क्योंकि जब तक धन वृद्धि न हो तब तक सभ्यता का उदय नहीं हो सकता है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। धन वृद्धि वहीं हो सकती है जहां की भूमि तथा जलवायु, भोजन आदि की उत्पत्ति में सर्वथा अनुकूल होवें। उत्तरीय अमेरिका में जिस बात का अभाव था वह केवल यही था। परन्तु उत्तरीय अमेरिका का दक्षिणीय भाग एक प्रकार की जलग्रीवा के रूप में बना हुआ है। जहां पर कि पश्चिमीय तथा पूर्वीय किनारे परस्पर बहुत कुछ समीप हो जाते हैं। इसको इस प्रकार से भी कहा जा सकता है कि उत्तरीय अमेरिका के दक्षिणीय भाग पर पूर्वीय तट की नमी तथा पश्चिमीय तट की ऊष्णता का परस्पर मेल हो जाता है। यही मैक्सिको

प्रदेश है जिसमें भारत तथा मिश्र के सदृश सभ्यता का आरम्भ हुआ था। संपूर्ण उत्तरीय अमेरिका असभ्य का असभ्य ही बना रहा परन्तु इसी प्रदेश के लोग सभ्य हो गये। यह इसी लिए कि इस प्रदेश में सभ्यता के उदय करने वाले कारणें पूर्व से ही विद्यमान थे। सन्फ्रान्सिसको तथा कैलिफोर्निया की रेतीली भूमि को यदि पूर्वीय नदियों की नहर द्वारा कोई देव दूत सींच देता तथा वहां पर नमी उत्पन्न कर देता तो वहां पर के लोग भी मैक्सिको के सदृश सभ्य हो जाते यह स्पष्ट ही है। परन्तु जब तक सभ्यता का उदय न हो जावे तब तक "नहर" आदि नहीं बनायी जा सकती है और जब तक नहर न बनें तब तक सभ्यता का उदय होना कठिन है। परिणाम जो कुछ होना था वह हम लोगों के सामने ही है। अमेरिका में मैक्सिको को छोड़कर कहीं पर भी सभ्यता का प्रारम्भ न हो सका क्योंकि अन्य किसी स्थान की अवस्था ही उसके अनुकूल न थी। यूरोप के सभ्य लोग जो कि विद्या विज्ञान से परिपूर्ण थे, जब अमेरिका में जाकर वसे उन्होंने उस स्थान को नवीन जीवन दे दिया तथा अमेरिका को भी सभ्य देशों के शिरोमणि होने तक के पद को पहुँचा दिया।

दक्षिणीय अमेरिका

उत्तरीय अमेरिका की अपेक्षा दक्षिणीय अमेरिका की दशा और भी विचित्र है। दक्षिणीय अमेरिका का उत्तरीय भाग जहां पूर्वीय किनारे पर शीत तथा नमी युक्त है तथा पश्चिमीय किनारे पर ऊष्ण है वहां उसका दक्षिणीय भाग अपने उत्तरीय भाग की अपेक्षा सर्वथा ही विपरीत है। दक्षिणीय भाग

में पूर्वीय किनारा पश्चिमीय किनारे की अपेक्षा अधिक ऊष्ण है।

इन सब अवस्थाओं के होते हुए भी दक्षिणीय अमेरिका में वे ही गुण विद्यमान हैं जिन गुणों का मैक्सिको को छोड़ कर उत्तरीय अमेरिका में सर्वथा अभाव था। दक्षिणीय अमेरिका में जहां नमी है वहां ऊष्णता भी विद्यमान है। भूमि भी बेअन्त उपजाऊ है। इन सब बातों के होते हुए भी वहां पर पीरू को छोड़कर अन्य किसी स्थान में सभ्यता का उदय न हो सका।

ब्राजील

ब्राजील देश ही संसार में एक ऐसा देश है जहां पर प्रकृति देवी ने अपना अवतार लिया है। ऐसा मालूम पड़ता है। ब्राजील देश के क्षेत्र फल में यूरोप के बराबर है। उसके अन्दर कुछ ऐसे स्थान हैं जिनको कि संसार भर में सब से उपजाऊ कह सकते हैं। ब्राजील देश का प्राकृतिक सौन्दर्य्य अपूर्व है। संपूर्ण देश भिन्न भिन्न प्रकार की लताओं कुञ्जों तथा वृक्षों से सुशोभित है। अरबों की संख्याओं में कीड़े तथा जीव जन्तु उस स्थान पर वास करते हैं। सुन्दर सुन्दर सर्प, पशु, पक्षियों के कारण उसे प्रकृति देवी का चिड़िया घर कहें तो अत्युक्ति न होगी। भयानक से भयानक जानवर अनन्त संख्या में उस रम्यवन प्रदेश को सदा ही कंपाया करते हैं। अधिक क्या लिखें लेखनी तथा वाणी दोनों ही ब्राजील देश के प्राकृतिक सौन्दर्य्य को वर्णन करने में असमर्थ है। इन सब ऊपर लिखित सभ्यता की उत्पत्ति की अनुकूल अवस्थाओं के विद्यमान होते

हुए भी ब्राजील देश एक मात्र "मान्सून" हवा के कारण ही असभ्यों तथा पशुओं का निवास स्थान ही बना रहा। सभ्यता देवी की हिम्मत न पड़ी कि वह उसे अपना निवास स्थान बना सके। ब्राजील देश में मान्सून सारे वर्ष भर लगातार चलती रहती है, कभी उत्तर पूर्व से तो कभी दक्षिण पूर्व से। दक्षिणीय अमेरिका के पूर्वीय किनारे से चली हुई मान्सून हवा अटलान्टिक समुद्र को पार करके अन्देश (Andes) पर्वत माला पर जा टकराती है। उस उच्च पर्वत श्रेणी को पार करने में असमर्थ होकर ब्राजील देश में ही अपना संपूर्ण पानी छोड़ देती है जिससे कि वहां पर बड़ी बड़ी भयानक हानिकारक बाढ़ें नदियों में आ जाती हैं। दक्षिणीय अमेरिका में जहां नदियां ही स्वभावतः बेअन्त बड़ी। हैं वहां वर्षा द्वारा इस सीमातक पानी के मिलने तथा सूर्य की गर्मी के भी पर्याप्त होंने से ब्राजील देश उपरि वर्णित एक रम्यवनस्थली बन गया। मनुष्यों को अपनी उन्नति करने का कई एक विघ्नों के कारण अवसर प्राप्त न हो सका। आरम्भिक असभ्य जातियां ब्राजील देश में वन के अत्यन्त निवड़ होने से कृषि को न कर सकी और यदि कृषि करना किसी प्रकार से आरम्भ भी करतीं तब भी वन के अन्दर रहने वाले कीड़े तथा टिड्डी दल उस कृषि को कब छोड़ने वाले थे। सारांश यह है कि ब्राज़ील देश में प्रकृति की अति उदारता ने सभ्यता को बढ़ने से सर्वथा रोक दिया। ब्राजील देश में पर्वत माला जहां अनुलंघनीय तथा अनतिक्रमणीय है वहां नदियां इतनी चौड़ी हैं कि उन पर पुल आदि का बनाना शक्य नहीं है। अधिक क्या कहें ये

विघ्न इस सीमा तक अधिक हैं कि वहां सभ्यता के आरम्भ का तो कहना ही क्या, यूरोप के सभ्य लोगों ने वहां अपनी संपूर्ण विद्या को लगा डाला परन्तु इन विघ्नों से उनका अभी तक छुटकारा न हो सका है। यूरोप के संपूर्ण प्रकार की उन्नतियों तथा विज्ञानों से सहारा लेते हुए भी यूरोपियन लोग ब्राजील में किसी विशेष प्रकार की उन्नति अब तक न कर सके हैं। फ्रान्स से १२ गुणा बड़े होते हुए, उत्तम उर्वरा भूमि से युक्त, पशु तथा वनस्पति के आगार स्वरूप ब्राजील देश में अब तक कुल मिलाकर जन संख्या ६० लाख से ऊपर नहीं है। यह तो हुआ ब्राजील देश का वर्णन अब हम पीरू देश के ऊपर कुछ एक शब्द लिखेंगे।

पीरू (Peru)

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि ब्राजील में जहां वर्षा तथा नदी दोनों के द्वारा भूमि सींची जाती है वहां उष्णता के अधिक होने से भोजन तथा अन्य वनस्पतियां बेअन्त राशि में उत्पन्न होती हैं। साथ ही पूर्व में यह भी दिखाया जा चुका है कि प्रकृति की इस अत्यन्त उदारता के कारण ही वहां पर सभ्यता का उदय न हो सका। परन्तु पीरू में यह बात न थी। पीरू में जहां भूमि उर्वरा तथा नमी युक्त है वहाँ ऊष्णता भी पर्याप्त है तथा ब्राजील देश के सदृश प्रकृति की अति उदारता भी वहां पर नहीं है। यही कारण है कि संपूर्ण दक्षिणीय अमेरिका में पीरू ही एक ऐसा देश है जहां पर सभ्यता ने अपना पैर जामाया। पीरू में भारत तथा मिश्र के सदृश अपना जातीय भोजन पर्याप्त राशि में होता है। मैक्सिको तथा पीरू में मकई बहुत होती है। इन दोनों देशों

में बनाना (Banana) नामी फल तो इस कदर होता है कि उसका वर्णन करना कठिन है। एक एकड़ पर उत्पन्न गेहूँ यदि दो मनुष्यों के लिए पर्याप्त हो तो बनाना उतने ही एकड़ पर बोया हुआ ५० मनुष्यों के लिए पर्याप्त हो जाता है। भोजन के सस्ते होने के कारण भारत तथा मिश्र में जिस सभ्यता ने जन्म लिया उसी प्रकार की सभ्यता यदि मैक्सिको तथा पीरू में भी विद्यमान हो तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं कहा जा सकती है।

मैक्सिको तथा पीरू में उच्च श्रेणी के व्यक्तियों ने जो व्यर्थ रुपया बहाया है उसको उन लोगों के मकान ही प्रकट कर रहे हैं। उच्च श्रेणी के लोगों के भवनों में जो भोग विलास के पदार्थ दिखायी पड़ते हैं उन्हें देखकर ही वहां की सभ्यता का पूर्ण तौर पर अनुमान हो जाता है। पीरू में राजकीय संपूर्ण कर दरिद्रों को ही देना पड़ता है। पुरोहितों तथा शासक श्रेणी के व्यक्तियों को कर सदा के लिए राज्य नियमों द्वारा मुक्त किया हुआ है। विचारे दरिद्र लोग राजकीय करों के देने में असमर्थ हुए हुए अपने श्रम को ही राज्य के हाथ में सुपुर्द कर देते हैं। विचित्रता तो यह है कि पीरू में राज्य ने दरिद्र जनता की स्वतन्त्रता छोटी सी छोटी बातों तक में राज्य नियमों द्वारा छीन ली है। यह अवस्था यहां तक पहुँची हुई है कि शासकों की विना अनुमति के प्रजा अपने वस्त्रों तथा निवास स्थानों तक का परिवर्तन नहीं कर सकती है। राज नियम द्वारा प्रत्येक मनुष्य के लिए पेशे नियत किये गये हैं। विवाह तथा अन्य आवश्यकीय कार्यों

में भी प्रत्येक मनुष्य के पीछे राज नियम लगे हुए हैं। इस प्रकार की अस्वतन्त्र प्रजा में पारस्परिक भेद्भाव किस सीमा तक होते हैं यह भारत तथा मिश्र के इतिहास में भी दिखाया जा चुका है। मैक्सिको में पीरू के सदृश राज्य नियम द्वारा जात पात का अन्तर प्रजा में नहीं डाला गया है तो भी वहां पर प्रायः पुत्र लोग उसी पेशे में काम किया करते हैं जिनमें कि उनके पिता लोग किया करते थे। प्रत्येक प्रकार के नवीन परिवर्त्तन से वहां के निवासी भयभीत होते हैं। और इस प्रकार का संकुचित विचार प्रायः उन देशों की प्रजाओं में हुआ ही करता है जिनमें कि शासक श्रेणी के लोग संपूर्ण राजनैतिक शक्ति को अपने ही हाथ में कर लिया करते हैं। मैक्सिको में भारतवर्ष के ही सदृश लोग धर्म आदि के परिवर्त्तन में हिचकते हैं। प्राचीन काल में मिश्र में भी यही दशा थी। महाशय विल्किन्सन का कथन है कि मिश्री लोग अन्य किसी परिवर्त्तन से इतना नहीं घबड़ाते हैं जितना कि अपने धर्म के परिवर्त्तन से। दो हजार तीन सौ वर्ष गुजरे हेरोडोटस (Herodotus) ने मिश्र देश के निवासियों के विषय में लिखा था कि "वे लोग जहां अपने पुराने रीति रिवाजों की बहुत ही अधिक रक्षा करते हैं वहां नवीन रीति रिवाजों को ग्रहण नहीं करते हैं। इस विषय पर जितना हम गहरे तौर पर विचार करते हैं उतना ही हमें अपने उपरि लिखित कथन की सत्यता पर प्रमाण मिलते हैं। मिश्र के सदृश ही पीरू तथा मैक्सिको में वे विशाल भवन दिखायी पड़ते हैं जिनको कि बनाया जाना श्रमियों पर विना अत्याचार तथा क्रूरता के असम्भव प्रतीत होता है। पीरू

में एक राजभवन को बनाने में जहां ५० वर्ष तक बीस हज़ार मनुष्य लगे रहे थे वहां मैक्सिको में २ लाख मनुष्यों का श्रम एक राजभवन के बनाने में व्यय हुआ था। सारांश यह है कि यूरोप के अतिरिक्त अन्य सब ही स्थानों में प्राकृतिक तत्वों के प्रभाव के कारण जहां भिन्न भिन्न व्यक्तियों के पास धन की वृद्धि हुई वहां उसका उचित रीति पर बांट न हुआ। और इसी कारण संपूर्ण की संपूर्ण शासक तथा नियामक शक्ति धनवानों के ही हाथ में चली गयी और अव शिष्ट जनता दरिद्रता तथा परतन्त्रता के पञ्जे से अभी तक छुटकारा न पा सकी है। भूमि, जलवायु, भोजन का किसी देश की सभ्यता पर जो प्रभाव पड़ता है वह सविस्तर दिखाया जा चुका है अब प्राकृतिक परिस्थिति का सभ्यता पर प्रभाव दिखाने का यत्न किया जावेगा।

प्राकृतिक परिस्थिति का सभ्यता की उत्पति में प्रभाव

जलवायु भूमिका जहाँ मनुष्यों के धन की वृद्धि तथा उसके विभाग पर प्रभाव पड़ता है वहां प्राकृतिक परिस्थिति का उनके विचार की वृद्धि तथा उसके विभाग पर प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक परिस्थिति पर विचार करने से पूर्व उसको दो भागों में विभक्त कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) मनुष्य की कल्पना शक्ति पर प्रभाव डालने वाली प्राकृतिक परिस्थिति।

(२)—मनुष्य की विचार शक्ति पर प्रभाव डालने वाली प्राकृतिक परिस्थिति।

इसमें सन्देह नहीं है कि उच्च योग्यता वाले पुरुषों में विचार शक्ति तथा कल्पना शक्ति एक दूसरे की सहायक रहती हैं परन्तु समाज या जाति के संघटित शरीर में यह दशा नहीं है। यहां तो विचार शक्ति पर कल्पना शक्ति का अभी तक प्रभुत्व चला आ रहा है और जिसके कारण समय समय पर मनुष्यों को हानियां पहुँचती ही रहती हैं। बढ़ती हुई सभ्यता की यह प्रवृत्ति है कि वह किसी प्रकार से समाज रूपी शरीर के विभाग में भी कल्पना शक्ति को गौण कर विचार शक्ति को मुख्यता देवे। इस समय हमें जो कुछ दिखाना है वह यही है कि प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण समाज की कल्पना शक्ति ने किन किन नवीन काल्पनिक सिद्धान्तों का प्रचार किया, तथा उसने किस प्रकार अभी तक सभ्य संसार को भ्रम जाल से न निकलने दिया।

भयानक, उद्दण्ड तथा अनियमय प्राकृतिक परिस्थितियों में पले हुए मनुष्यों में कल्पना शक्ति विचार शक्ति पर प्रबल रहती है तथा विचार शक्ति को उठने का अवसर बहुत ही कम प्राप्त होता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों को अनिवार्य तथा अनतिक्रमणीय समझ बैठता है और इसीके कारण वह उन भयानक प्राकृतिक शक्तियों से बचाने में अपने आपको असमर्थ समझता हुआ उनको मान्य तथा पूज्य दृष्टि से देखने लगता है तथा उनकी

पूजा करता है जिससे वह उसको सुरक्षित रखें तथा उसके जीवन को कष्टमय न बना दें।

इस प्रकार भयानक, अति शक्तिशालिनी प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण मनुष्य के अन्दर जहां आत्मिक अविश्वास जड़ पकड़ लेता है वहां इससे विपरीत प्राकृतिक परिस्थिति वाले प्रदेशों के लोगों में आत्मिक विश्वास प्रबल हो उठता है। वे लोग अपनी शक्ति को कुछ २ समझने लगते हैं तथा वे लोग प्राकृतिक परिस्थितियों के अदलने बदलने तथा उसको अतिक्रमण करने तक का साहस करने लगते हैं। संसार के ऊपर दृष्टि डालने से प्रतीत होगा कि प्राचीन काल में प्रायः सभ्यता उन्हीं देशों में से आरम्भ हुई थी जहां कि प्राकृतिक परिस्थितियां अदम्य तथा क्रूर थीं। ऐसे देशों में सभ्यता का प्रारम्भ क्यों हुआ यह पूर्व ही विस्तृत तौर पर लिखा जा चुका है "नैकत्र सर्वे गुणाः" के अनुसार जहां उन देशों के जलवायु, भूमि, भोजन आदि सभ्यता के आरम्भ के लिए योग्य थे वहां उनकी प्राकृतिक परिस्थिति कल्पना की शक्ति की उत्तेजक होती हुई विचार शक्ति की वृद्धि के लिए अत्यन्त हानि कर थी। भारत, मिश्र, पीरु, मैक्सिको आदि प्रदेशों में आंधी, पानी, ओले, तूफ़ान, भूकम्प, टिड्डीदल, अवृष्टि, अतिवृष्टि, नदियों में बाढ़ आदि अनेकों ऐसे प्राकृतिक कार्य हैं जिनके होने से मनुष्य रोकना चाहते हुए भी नहीं रोक सकते हैं। कभी २ ऐसे प्रदेशों में वह भयानक २ प्लेग, चेचक, हैजा आदि बीमारियां फैलती हैं जिनसे कि मनुष्यों को अपने आपको बचाना कठिन हो जाता है। पीरू में भूकम्प से जनता में जो भय फैलता है उसका वर्णन

करना कठिन है। क्योंकि जहां भूकम्प उस स्थान पर अचानक ही बहुत वार आता है वहां उन लोगों के जीवन विलकुल असुरक्षित हो जाता है। तथा उन्हें कोई उपाय नहीं सूझता कि वह अपने आपको किस प्रकार इससे बचावें। सारांश यह है कि उपरि वर्णित भयानक क्रूर परिस्थिति के लोगों के अन्दर आत्म अविश्वास अत्यन्त बढ़ जाता है तथा वे लोग 'दैव" भाग्य" आदि को विशेष तौर पर मानने वाले हो जाते हैं। कल्पना शक्ति की जहां उन लोगों में प्रबलता हो जाती है वहां भ्रमात्मक अन्ध विश्वास उनमें स्थान कर लेते हैं और विशेष २ प्रकार के रीति रिवाजें वहां पर प्रचलित हो जाती हैं भिन्न २ हानि कर प्राकृतिक घटनाओं को "दैव" का कोप समझ कर वहां के लोग पूजने लगते हैं और समझते हैं कि इन घटनाओं को दूर करने का यदि कोई उपाय है तो वह यही है कि उनके कारण रूप दैव की उपासना की जावे। इन बातों की यदि सच्चाई देखनी हो तो किसी भी देश में देखी जा सकती है। भारतवर्ष में मालावार के जंगलों में रहने वाले असभ्य लोग अभी तक इसी प्रकार की बातों में विश्वास रखते हैं। विचित्रता तो यह है कि भारतवर्ष में इस विद्या के युग तक में भी आर्य जनता सर्पों की तथा वृक्षों की पूजा किया करती है। प्रत्येक प्रकार की बीमारी को इस देश में देवी का कोप बनादिया जाता है। जिस समय किसी जनता में अज्ञानता प्रबल हो तथा आकस्मिक घटनाओं के कारण उनकी विचार शक्ति की सीमा से बाहर हों, उस समय उनमें कल्पना के घोड़े दौड़ने लगते हैं

और प्रत्येक बात के प्राकृतिक कारणों के स्थान पर **दैवी कारणों के साथ** जोड़ दी जाती है। यूरोप में भी भारत के सदृश ही प्रत्येक प्रकार का भयानक रोग "दैव" का कोप ही समझा जाता है। और यह इसी लिए कि उन रोगों का कारण अभी तक जनता को उचित रीति पर ज्ञात नहीं है। परन्तु यहां पर यह न भूलना चाहिये कि यूरोप की प्राकृतिक परिस्थिति इतनी कठोर तथा अदम्य नहीं है। अतः वहां के निवासियों में भारत, ग्रीक, मिश्र आदि देशों की अपेक्षा **आत्मविश्वास** अधिक है। अदम्य प्राकृतिक परिस्थिति का किसी देश के साहित्य, धर्म तथा शिल्प पर क्या प्रभाव पड़ता है यह अब हम भारत तथा यूनान के इतिहास से स्पष्ट करने का यत्न करेंगे। यूनान की प्राकृतिक परिस्थिति भारत से सर्वथा विपरीत है। अतः दोनों देशों के साहित्य, धर्म तथा शिल्प में भेद दिखलाने से विषय बिलकुल स्पष्ट हो जावेगा।

भारतवर्ष: भारत के प्राचीन साहित्य को देखते ही भारतीयों की कल्पना शक्ति की प्रबलता हो जाती है, भारत में जहां संस्कृत के अन्दर गद्य काव्यों की संख्या बहुत ही न्यून है वहां पद्य काव्यों का भरमार है। विचित्रता तो यह है कि व्याकरण तक कविता से नहीं बचा है। ज्योतिष कोष, इतिहास, वैद्यक आदि सभी कवितामय दिखायी देते हैं क्या यह कल्पना थी कि प्रबलता के कम उदाहरण कहे जा सकते हैं? संसार में कोई ऐसी भाषा नहीं है। जिसमें इतने छन्दों के प्रकार हों जितने कि संस्कृत भाषा में हैं।

कल्पना शक्ति ने प्राचीन इतिहास को जो कुछ हानि पहुँचायी है उसका वर्णन करना कठिन है। कल्पना शक्ति के कारण प्राचीनों के प्रति जहां अनुचित मान्य हम लोगों में बढ़ गया है वहां सत्यता का घात भी पर्याप्त तौर पर हुआ है। जहां कल्पना शक्ति प्रबल हो वहां दूर के ढोल सुहावने हुआ ही करते हैं। यही कारण है कि संसार की सभी जातियों में 'स्वर्णीय युग' की एक भ्रमात्मक कल्पना विद्यमान है। प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि प्राचीन काल में एक सत्ययुग या स्वर्णीय युग था जब कि पापों का नामोनिशान न था, पारस्परिक कलह न होता था। चोरी को कोई जानता तक न था। सारा संसार शान्तिमय था। यही नहीं। कल्पना शक्ति ने प्राचीम पुरुषों की आयु को भी इस सीमा तक लम्बा कर दिया है कि उसपर किसी का भी विश्वास करना कठिन है। यहूदियों की तथा ईसाइयों की पुस्तकें भी इसी प्रकार की गाथाओं से परिपूर्ण है। संस्कृत भाषा तो इस प्रकार की बातों की मातृभाषा ही है उसका तो कहना ही क्या है। संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में लिखा है कि मनुष्य की आयु प्राचीनकाल में ८०,००० वर्षों की हुआ करती थी। केवल पवित्र जीवन वाले ही पुरुष १०,००,०० वर्षों से अधि आयु तक जीआं करते थे। पुराणों में युधिष्ठिर के विषय में लिखा है कि उसका राज्य २७,००० वर्षों तक रहा था तथा अलार्क का राज्य ६६,००० वर्षों तक रहा था। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि भारतीय साहित्य में प्राचीन राजाओं को जहां शासक का रूप दिया हुआ है वहां उन्हें

ऋषियों का भी रूप दे दिया गया है जिनमें कि किसी प्रकार का भी दूषण नहीं है। पुराणों में एक राजा के विषय में वर्णन किया हुआ है कि वह २० लाख वर्ष की उमर में राजगद्दी पर बैठा तथा उसने ६३ लाख वर्षों तक राज्य किया तथा १ करोड़ वर्ष की आयु तक बराबर जीना रहा। प्राचीनों के प्रति इसी पूज्य दृष्टि ने जो जो अनर्थ किये वे भी भुलाये नहीं जा सकते हैं। मनुस्मृति का निर्माण ३ हज़ार वर्षों से अधिक पूर्व का (यूरोपियनों की सम्मति में) नहीं कहा जा सकता है। परन्तु बहुत से ऐसे भारतवर्षीय अब भी मिलेंगे जो कि मनुस्मृति को बने हुए (४३,०२,००० × ४२६) वर्ष बताते हैं। ये सब जाति की कल्पना शक्तियों के खेल हैं। इन्हें सत्य समझना विचार शक्ति को सर्वथा ही उत्तर दे देना है। यूनानियों की दशा भारत से बहुत कुछ विपरीत थी और इसका कारण पूर्व ही लिखा जा चुका है कि वहां की प्राकृतिक परिस्थिति अदम्य नहीं है।

यूनान

यूनान तथा "भारत का यदि मुकाबला किया जावे तो प्रतीत हो सकता है कि दोनों देश एक दूसरे से कितने भिन्न हैं यूनान का कुल क्षेत्र फल भारत का $\frac{1}{14}$ वां भाग है। जलवायु वहां की स्वास्थ्यप्रद है। आंधी तूफान, भारत की अपेक्षा वहां पर बहुत ही कम होते हैं तथा जंगली जानवरों की भी बहुतायत नहीं है। ग्रीस में अधिक से अधिक ऊंचा पर्वत हिमालय का $\frac{1}{2}$ होगा नदियां भारत के सदृश अगाध नहीं है। साधारण से साधा-

रण व्यक्ति उन्हें आसानी से पार कर सकता है। भारत में जहां जंगल निविड़ तथा दुर्गम है। वहां हिमालय जैसे ऊंचे पर्वत, गंगा जैसी शीघ्र वाहिनी नदी तथा भयङ्कर जंगली जानवरों से स्थान स्थान में परिपूर्ण है। आंधी, तूफ़ान. अतिवृष्टि तथा अवृष्टि से प्रायः भारतीयों का दिल कांपा करता है। सारांश यह है कि भारत में प्राकृतिक परिस्थिति जहां भयानक तथा दुधर्ष है वहां यूनान में उससे सर्वथा विपरीत है। यही कारण है कि दोनों देशों में साहित्य, धर्म, तथा शिल्प में वह अन्तर विद्यमान है जिसे देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। भारत के देवताओं के साथ "भयानकता" का विशेष सम्बन्ध है। परन्तु यूनान के देवताओं के साथ यह बात नहीं हैं। दृष्टान्त के तौर पर भारतीयों के देवता "शिव" को ही लीजिये। शिवकी भयानक मूर्त्ति को देखते ही हृदय कांपने लगता है। जटाजूटों में गंगा, हाथों में लिपटा हुआ नागराज, चर्म के वस्त्र से सुसज्जित, चिता के भस्म से अवलिप्त देह वृषभ पर आरुढ़, त्रिनेत्रधारी शिवकी भयानक मूर्त्ति को देखकर किस महानुभाव का दिल हिल नहीं जाता है। परन्तु हिन्दु लोग इसी देव की परम भक्ति से उपासना किया करते हैं। यही नहीं शिव स ही सम्बद्ध दुर्गा या काली की मूर्त्ति पर एकबार दृष्टि डालो तो प्रतीत होगा कि चित्र कारों की कल्पना ने उसे किस कदर भयानक बनाने का यत्न किया है। लालजीभ निकाले, नर कपाल का हार पहने, खून खप्पर हाथ में लिए हुए काली की भयानक मूर्त्ति भी भयानक प्राकृतिक परिस्थिति का किसी समाज की सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ता है

इसी बात की दिग्दर्शक है । परन्तु यूनान की ओर जब हम निरीक्षण करते हैं। वहां कुछ दूसरा ही दृश्य दिखायी पड़ता है। भारतीयों के सदृश यूनान वालों ने अपने देवताओं को अत्यन्त अमानुषीय बनाने का यत्न नहीं किया है। यूनान वालों के देवता मनुष्य के सदृश ही रूपधारी हैं। उनके जहां विष्णु के सदृश चार हाथ नहीं है वहां ब्रह्मा के सदृश चार मुख भी नहीं है और न शिव के सदृश तीन आंखे। जो कुछ उनका रूप है वह केवल मानुषीय रूप है। यद्यपि किसी विशेष २ गुणों के वह एक मात्र सूचक है। दृष्टान्त के तौर पर यूनान वालों ने जहां स्त्रियों की रुखाई को दीना (Diana) में, उनकी सुन्दरता तथा भोग विलासता को वेनस (Vanus) में प्रकट किया है; वहां स्त्रियों के अभिमान को जूनो (Juno) में तथा उनके कार्य चातुर्य को मिनर्वा (Minerva) में दिखाने का यत्न किया है। यही नहीं, यूनानियों ने अपने देवता नैप्चून को (Naptun) नाविक, बल्कन (Valcan) को शिल्पी, अपोलो (Apollo) को कवि तथा वृक्षों का रक्षक के तौर पर माना है। परन्तु इन सब की आकृतियों को मनुष्य तथा स्त्रियों की आकृतियों पर ही बनाया गया है। कामदेव की पत्थर की मूर्त्ति को जो यूनान के शिल्पियों ने सुन्दरता दी है उसको देखने के लिए आज भी दूर २ देश के यात्री उस देश में जाते हैं। सारांश यह है कि भारत तथा यूनान की मूर्त्ति पूजा में आधार भूत कुछ और ही सिद्धान्त काम कर रहे हैं। यूनान वालों ने मनुष्यों तथा देवताओं के बीच में अन्तर घटाने का जहां यत्न किया है वहां भारतीयों ने उस अन्तर को अधिक

से अधिक बढ़ाने का यत्न किया है। यूनान वालों की देव पूजा में जहां "विश्वास" काम कर रहा है वहां भारतीयों की देव पूजा में 'अविश्वास' अर्थात् जहां यूनानी अपने आप को अपने देवताओं के सदृश बनाने में आत्मविश्वास रखते हैं वहां भारतीय ऐसा नहीं। क्योंकि भारतीयों ने अपने देवताओं को वह रूप दिया है जिसे कि वह स्वयं प्राप्त कर सकने में अशक्त हैं। इस प्रकार की अवस्था भारतीयों की ही एक मात्र नहीं है अपितु पीरू, मैक्सिको आदि सभी उष्ण प्रदेशों के लोगों में यह बात पायी जाती है। संक्षेप से संपूर्ण बातें यों कही जा सकती हैं कि प्राकृतिक परिस्थिति का समाज की कल्पना शक्ति तथा विचार शक्ति पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। दुर्धर्ष भयानक प्राकृतिक परिस्थिति जहां कल्पना शक्ति को विचार शक्ति पर मुख्यता देती है, वहां मधुर प्राकृतिक परिस्थिति विचार शक्ति को उच्च स्थान देती है तथा कल्पना शक्ति को विचार शक्ति के आधीन कर वास्तविक सभ्यता को उन्नत करने में एक बड़ा भारी भाग लेती है।

तृतीय परिच्छेद

समाज की उन्नति पर सदाचार तथा बुद्धि सम्बन्धी नियमों का प्रभाव

या

आचार तथा विचार का सभ्यता पर प्रभाव

यदि हम मन ही मन में विचारना प्रारम्भ करें कि समाजिक उन्नति क्या चीज़ है तो हमें मालूम पड़ेगा कि यह दो प्रकारकी होती है।

(१) सदाचार सम्बन्धी (moral)

(२) विचार सम्बन्धी (Intellectual)

प्रथम जहां हमारे कर्त्तव्य कर्म के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है वहां द्वितीय का हमारे ज्ञान के साथ। इतिहास में इन दोनों विद्याओं की अत्यन्त आवश्यकता है। सामाजिक उन्नति तब तक उन्नति नहीं कही जा सकती है जब तक कि समाज की इन दोनों में से किसी एक ही में उन्नति हो। विद्या विज्ञान बढ़ भी जावें तो क्या यदि सदाचार ही नष्ट हो जावे। सारांश यह है कि सभ्यता की वृद्धिके लिए सदाचार तथा विचार इन दोनों का ही उन्नत होना आवश्यक है। अब प्रश्न यहां पर उठता है कि **सदाचार तथा विचार** में सभ्यता की वृद्धि करने में कौन मुख्य तथा कौन गौण है ? क्योंकि सभ्यता जहां दोनों ही से सम्मिलित होने से बढ़ती है वहां

उन दोनों का ही एक सदृश प्रबल होना भी आवश्यकन नहीं है। जो मुख्य हो उसका पता लगने से हमें बहुत से लाभ पहुँच सकते हैं। क्योंकि जगत् की सभ्यता की उन्नति में यदि **सदाचार** ही मुख्य हो तथा **विचार** गौण हो तो हम किसी जाति या समाज की उन्नति को पता लगाने में सदाचार को ही मापक बना लेवें और यदि ऐसा न होवे तो हम किसी जाति के 'विचारों' को देखकर ही उसकी सभ्यता का पता लगाने का यत्न करें। इस विषय में अधिक गहरा न भी जाते हुए यह एक दम से कहा जा सकता है कि सभ्यता की उत्पति में 'विचारों' का जो भाग है उसके मुकाबले में सदाचार का कुछ भी भाग नहीं है। आज से हज़ारों वर्षों से पूर्व मनुष्य जाति को सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का ज्ञान हो गया था। वेही सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्त अब तक वैसे के वैसे ही विना किसी प्रकार के परिवर्त्तन के चले आरहे हैं। अहिंसा. सत्य, प्रेम, सद्व्यवहार, परोपकार आदि सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तो का ज्ञान जैसे आज से हज़ार वर्षों पूर्व था वैसा ही आज भी है। सौकड़ों मतों ने इन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार करने का यत्न किया परन्तु ये सिद्धान्त ज्यों के त्यों सत्य बने रहे। परन्तु सदाचार के सिद्धान्तों के सदृश विचार के सिद्धान्तों में अस्थिरता नहीं है। जहां सदाचार का वर्त्तमान कालीन एक भी सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसका कि हमारे पूर्वजों को पता न हो वहां विचार सम्बन्धी बहुत से सिद्धान्त हैं जिनका हमारे पूर्वजों को ज्ञान तक न था। प्रत्येक दशा में वर्त्तमान कालीन सभ्य जातियों के विचारों ने आक्रान्ति ला दी है। अरस्तु ने जिन

बातों को अपनी विचार शक्ति से देखने का यत्न ही किया था आजकल के मनुष्यों ने अपनी विचार शक्ति से उसको कर के दिखला दिया है। सदाचार के सिद्धान्त स्थिर हैं यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। किसी समाज की सभ्यता में यदि इन स्थिर सिद्धान्तों के ही मुख्यता होती तो उसकी सभ्यता स्थिर स्वभाव की होनी चाहिए थी क्योंकि स्थिर का प्रभाव स्थिर ही होना चाहिए था परन्तु ऐसा नहीं है। सभ्यता में दिन-पर दिन परिवर्त्तन होता रहता है। और यह परिवर्त्तन विचार सम्बन्धी बातों के कारण ही हुआ है न कि सदाचार सम्बन्धी बातों से। इसमें सन्देह नहीं है कि सदाचार के सिद्धान्त बहुत ही अच्छे हैं तथा बहुत ही प्रिय हैं परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि उन सिद्धान्तों के कारण जातियों को लाभ के स्थान पर हानि ज्यादे ही पहुंची है। सम्पूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि उच्च उद्देश्य वाले शक्तिशाली व्यक्तियों ने अपने उद्देश्यों के प्रचार में जिस स्थान पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग किया है उस स्थान को लाभ के स्थान पर उन्होंने हानि ही अधिक पहुंचायी है। विचित्रता तो यह है कि सदाचार के सिद्धान्तों के विचार में जितने प्रबल तथा उत्कट इच्छा किसी शक्तिशाली व्यक्ति में होती है वह उतनी ही अधिक समाज को हानि पहुँचाया करती है। 'धार्मिक कतले आम का' इतिहास इसी सच्चाई को दिखा रहा है। इस

प्रकार के 'धार्मिक कतले आम' को मचाने वाले व्यक्ति सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों को अपनी विधि पर फैलाने के इच्छुक हुए हुए दूसरों पर अत्याचार तथा क्रूरता के व्यवहार करने पर सन्नद्ध हो गये। यह क्यों ? यह इस लिए कि यदि तुम किसी व्यक्ति में यह विचार पूर्ण तौर पर बैठा दो कि "जो जो अमुक धार्मिक सिद्धान्तों को नहीं मानता है वह नरक में जाता है तथा येही सिद्धान्त सच्चे सिद्धान्त हैं. सबको यही मानना चाहिए" तथा फिर उसी व्यक्ति के हाथ में अनन्त शक्ति दे दो तो यह स्वाभाविक ही है कि धर्मान्ध हुआ २ वह जिसको अपने धर्म में आता हुआ न देखेगा उसी पर घृणा करता हुआ उसे कतल करवाने का यत्न करेगा। जितना ही उस व्यक्ति का अपने धर्म में प्रबल श्रद्धा तथा विश्वास होगा उतना ही वह इस 'कतले आम' को जोर शोर से करेगा। उसके प्रबल विश्वास तथा श्रद्धा को उसमें से निकाल कर फेंक दो। परिणाम क्या होगा सब की सब खून खराबियां एक दम से रुक जावेंगी। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है। इसके सैकड़ों दृष्टान्त हैं, इसको न मानना कई सदियों के इतिहास की शिक्षाओं को एक दम से भुला देना होगा। इस विषय को सपष्ट करने के लिए हम यहां पर ईसाइयों तथा मूर्त्तिपूजकों के धार्मिक इतिहास में से दो दृष्टान्तों को सामने रखते हैं। जिससे उपरि लिखित कथन की सत्यता पाठकों पर प्रकट हो जावे।

१—ईसाइयों को कई एक श्रीमान् सम्राटों ने समय समय पर बहुत ही अधिक कतल करवाया। आश्चर्य की उस समय हमारे अन्दर सीमा नहीं रहती है, जब कि हम

उन रोमन सम्राटों में कई एक ऐसे सम्राटों का नाम पाते हैं जो कि सब से अच्छे स्वभाव के गिने जाते थे। विचित्रता यह है कि लुच्चे स्वार्थी रोमन सम्राटों में से बहुतों ने ऐसा 'मानवी घात' रूपी बुरा काम न किया। दृष्टान्त के तौर पर कामोडस (Commodus) तथा ईलग्रैवेलस (Elagabalus) को लीजीये। दोनों ही इतने स्वार्थी तथा लुच्चे थे जिसका वर्णन करना कठिन है। परन्तु उन्होंने ईसाइयों का न घात करवाया और न उनके विरुद्ध कोई विशेष नियम ही बनवाया परन्तु सम्राट् मार्कश आर्लियस (Marcus Aurelius) अपने समय में दयालुता, सत्यपरायणता, तथा साहसिकता के लिए प्रसिद्ध था परन्तु ईसाइयों का इसने बुरी तरह से घात करवाया था और यह घात कभी न होता यदि सम्राट् को अपने पितृपितामहों के धर्म पर अन्ध विश्वास न होता। इसी प्रकार सम्राट् जूलियन (Julian) के सदाचारता पर आज तक किसी को भी सन्देह नहीं हुआ है। परन्तु इसने भी ईसाइयों का जो घात करवाया है वह इतिहास में स्मरण के योग्य है।

२—रोम का दृष्टान्त दिया जा चुका अब हम स्पेन का दृष्टान्त लेते हैं। स्पेन की जनता सत्यपरायणता तथा धार्मिक विश्वास के लिए इतिहास में प्रसिद्ध रही है। परन्तु "मानवीघात" को वह रोकने में कभी भी समर्थ न हो सकी। यह क्यों? यह इसीलिए कि वहां की जनता ने "धर्म की रक्षा" को अपना राष्ट्रीय उद्देश्य बना लिया तथा उसकी रक्षा के लिए तन मन धन से यत्न करने लगी। इसका जो परिणाम हुआ वह स्पेन के इतिहास को पढ़ने वालों से छिपा हुआ

नहीं है। यूरोप में खून की नदियां बहायी गयी, सैकड़ों योग्य योग्य मनुष्यों को जीते जी जला दिया गया; परन्तु सदाचार के सिद्धान्त इस भयानक क्रूरघात को रोकने में सर्वथा भी समर्थ न हो सके। 'क्रूर घात' को यदि किसी चीज ने यूरोप में रोका तो वह केवल 'विचारों की उन्नति' ही थी। हमारा तो विश्वास है कि इन धार्मिक अन्ध विश्वासों ने मनुष्य समाज को जितनी हानियां पहुंचायी है उतनी शायत् किसी ने भी नहीं। 'धार्मिक मानवी घातों' से सैकड़ों योग्य धर्मात्मा मनुष्यों का जलाया जाना तथा मारा जाना हमने बहुत वार सुना है परन्तु हमने जनता के उन अनन्त मनुष्यों के विषय में कभी नहीं सोचा जिन्होंने कि मृत्यु से डरकर अपनी सम्मतिओं को बदल दिया तथा जिनके कि हृदय में सत्य के स्थान पर छलने घर कर लिया। इन 'धार्मिकमानविघातों, के कारण ही जातियां थोड़े से समय में ही अपने सब के सब सद्गुणों को भुला देती हैं तथा असत्यपरायणता, छल, कपट आदि दूषणों को अवलम्बन कर लेती हैं। इसलिए यदि हम यह कह देवें तो उचित ही होगा कि जहां धार्मिक सिद्धान्तों ने संसार के मानवीघात से रोकने में अपनी असमर्थता दिखायी वहां विचार तथा विद्या की उन्नति ने इस भयानक रोग को संसार से सदा के लिए दूर फेंक दिया।

मानवी घात के सदृश सदाचार के सिद्धान्तों ने 'युद्धों' के रोकने में भी पूर्ण असमर्थता दिखायी। यह असभ्यता का क्रूर कार्य यदि किसी साधन द्वारा बहुत कुछ रुक गया तो वह विद्या विज्ञान तथा विचार की उन्नति थी। आज कल

युद्ध दिन पर दिन कम होते जाते हैं । इन युद्धों के कारण प्राचीन कालों में सामाजिक उन्नति पर जो जो बाधायें पड़ी थीं वह किसी से छिपी नहीं है। परन्तु अब युद्ध सम्बन्धी बाधाओं से भय करना वृथा है। यदि हम एक देश की दूसरे देश से तुलना करें तो हमें पता लगे गा कि किस प्रकार युद्ध का काल दूर दूर होता जाता है। अब प्रश्न केवल यही उठता है कि इस आश्चर्यकर उन्नत बात के ले आने में सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का कितना भाग है ? यदि इस का उत्तर इतिहास की साक्षी से दिया जावे तो यही उत्तर होगा कि सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का युद्धों के रोकने में कुछ भी भाग नहीं है। क्योंकि इसमें सन्देह ही किसको हो सकता है कि अद्य कालीन विचारकों ने ही केवल युद्ध की आचार सम्बन्धी हानियां नहीं प्रकट की हैं, पहिले विद्वानों को भी इसका पता न था। यह सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आया है कि (१) स्वरक्षण के लिए किया हुआ युद्ध (Defensive war) अच्छा होता है तथा (२) दूसरों से उनके दमन करने के लिए (Ofensive war) युद्ध करना बुरा होता है। ये दोनों सिद्धान्त तो पहिले जैसे थे वैसे ही आजकल हैं। परन्तु जातीय युद्ध दिन पर दिन कम होते जाते हैं। यह क्यों ? सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों के कारण तो यह हो ही नहीं सकता है। वे तो जैसे पूर्व थे वैसे ही अब हैं। स्थिर का प्रभाव स्थिर ही होना चाहिए। युद्ध की ओर जातियों की अप्रवृत्ति का एक मात्र कारण विचार सम्बन्धी उन्नति को ही कहा जा सकता है। विचार की उन्नति के कारण किस प्रकार युद्धों की ओर जनता की अप्रवृत्ति हो गयी है इसको मैं अब दिखाने का

यत्न करूंगा।

यह किसी से छिपा नहीं है कि विचार सम्बन्धी उन्नति से विचारक तथा शिक्षित श्रेणी की संख्या बढ़ती है। शिक्षित श्रेणी का सैनिक श्रेणी से जो अन्तर है वह किसी से छिपा नहीं है। क्योंकि शिक्षित श्रेणी तो शान्तिमय कार्यों से अपना निर्वाह किया करती है और सैनिक श्रेणी युद्धों से अपनी तृषा को शान्त किया करती है। इन दोनों श्रेणियों में से जिस श्रेणी की समाज में प्रधानता होती है समाज तो उसी के अनुसार चलता है। समाज में यदि शिक्षितों की संख्या पर्याप्त तौर पर अधिक हो जावे तो समाज का युद्धों की ओर न जाना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार यह परिणाम निकला कि जितनी २ विचार सम्बन्धी उन्नति समाजों में होती जावेगी उतनी ही उतनी उनकी युद्धों की ओर से प्रवृत्ति हटती जावेगी। असभ्य जातियों में विद्या विचार की उन्नति नहीं होती है अतः उन लोगों में प्रसिद्धि तथा कीर्ति* का एक मात्र कारण युद्ध में वीरता

---

* महाशय बक्ल शायत् समझते हैं कि विचारों का शान्ति के साथ कोई बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु ऐसा उनका समझना गलती करना है। असदाचारी क्रूर शिक्षित लोग समाज को जितनी हानियां पहुंचा सकते हैं उतनी मूर्ख लोग नहीं। शिक्षा तथा विचार सम्बन्धी उन्नति मनुष्य को 'शान्ति प्रिय' उसी अवस्था में बनाती है जब कि वह सदाचार के प्रतिकूल न हो। आजकल यूरोपियन राष्ट्रों का उद्देश्य व्यापार व्यवसाय की उन्नति करना है तथा अपने अपने उपनिवेशों का बसाना है। उन दोनों ही उद्देश्यों की प्राप्ति में यूरोपियन राष्ट्रों ने जो लुम्बपेशियां की हैं उसका वर्णन करना कठिन है। इसपर बहुत कुछ तो मैं अपने सम्पत्ति शास्त्र में 'पूंजी की उत्पत्ति' के प्रकरण

को ही दिखाना समझता है। उनमें अच्छा तथा योग्य पुरुष वही गिना जाता है जिसने जितने अधिक मनुष्यों का घात किया हो। परन्तु सभ्य जातियों में यह बात नहीं पायी जानी चाहिए। ज्यों २ जातियां सभ्यता की ओर पग धरती हैं त्यों त्यों उनमें युद्ध की ओर घृणा उत्पन्न होती जाती है। इन दिनों में यूरोप के अन्दर (बक्क महाशय के जीवन काल में) दो अत्यन्त असभ्य स्वेच्छाचारी एक सत्तात्मक राज्य हैं। (१) एक तो रशिया (२) दूसरा टर्की। कई वर्षों के अनन्तर यूरोप की शान्ति में यदि किसी ने विघ्न डाला तो वे येही असभ्य जातियां हैं। परन्तु यूरोप की अन्य सभ्य-जातियां फ्रांस, इंगलैण्ड आदि में अब यह युद्ध की भयानक तृष्णा चिरकाल से बुझ रही है और यही कारण है कि इन सभ्य जातियों में पूर्ववत् युद्ध नहीं रहे हैं। सारांश यह है कि युद्ध का सम्बन्ध बहुत कुछ अशिक्षा के साथ है न कि सदाचार

में ही दूंगा। पाठकों के विशेष ज्ञान के लिए यहां पर भी उसका कुछ भाग उद्धृत कर के रख देता हूं।

"सभ्य तथा शिक्षित पाश्चात्य जातियों के औपनिवेशिक शैली के विषय में माहाशय हार्विट (W howi.t) का कथन है" संसार के प्रत्येक प्रदेश पर तथा विजित जातियों के प्रत्येक मनुष्य पर ईसाई जातियों ने जो अत्याचार तथा असभ्यता के व्यवहार किये हैं उनका भयानक से भयानक, क्रूर से क्रूर, निर्लज्ज अशिक्षित जातियों में से किसी जाति के कार्यो मे मुकाबला करना कठिन है। (The barb arities and desperat e outra ges of the so-called cristian race throughout every region of the world, and upon every people they have been able to sudue, are

के साथ रूस में जनता अशिक्षित है तथा सैनिक श्रेणी क राज्य कार्य में प्रबलता है यही कारण है कि वहां पर प्रसिद्धि तथा कीर्त्ति का एक मात्र साधन युद्ध ही समझा जाता है। स्थिर सेना को रखना उस देश में सबसे अधिक आवश्यक समझा जाता है। शत्रु को जीतना तथा युद्ध में पराजित न होना वहां के लोगों में सबसे उत्तम तथा यश का काम समझा जाता है यह सब क्यों? यह इसी लिए कि रशियन में विद्या का प्रचार बहुत ही थोड़ा है। परन्तु इंगलैण्ड में रूस के सदृश दशा नहीं रही है। इस देश में विचारों की उन्नति बड़ी शीघ्रता से हो रही है। मध्य श्रेणी के लोग राज्य कार्य में दिन पर दिन अधिक भाग लेने लग गये हैं। परिणाम इसका यह हो गया है कि आंग्लराष्ट्र की युद्ध की ओर से प्रवृत्ति बहुत ही अधिक हट गयी है। आजकल समाज के बहुत सारे व्यक्ति इंगलैण्ड की इस प्रवृत्ति से बेअन्त घबड़ा रहे हैं। क्योंकि यदि यह प्रवृत्ति सीमा से भी पार हो गयी तो इंगलैण्ड कहीं स्वरक्षण के लिए अन्य उचित साधनों का अवलम्बन करना भी न छोड़ देवे। जो कुछ भी हो। हमें जो

---

not too paralleled by those of any other race, how ever fierce, however untaughtт, and however reckless of mercy and of shome in any age of the earth " (See korl Max, Capital chapt XXXI. P779.) इसी प्रकार हालैण्ड के औपनिवेशिक शासन के विषय में एक महाशय ने लिखा है "उसका शासन धोखे बाजी, कमीनापन, मक्कारी, छल कपट, घूंस आदि बुराइयों का घर है" सब से अधिक आश्चर्य की जो बात है वह

कुछ इस प्रकरण में कहना है वह यही है कि इंगलैण्ड की युद्ध की ओर से प्रवृत्ति सर्वथा ही हट गयी है। और इस वृप्रत्ति के हटने का कारण सदाचार के सिद्धान्तों का विशेष प्रचार नहीं है अपितु विद्या का प्रचार है।

इसी विषय को यदि हम और विचार करें तो पता लगेगा कि आज कल सब जातियों में सैनिक बनने के कार्य को भी अनावश्यक समझा जाने लग पड़ा है। असभ्यावस्था में जातियां बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य में प्रवृत्त होती हैं। परन्तु ज्यों २ जातियां सभ्य होने लगती हैं त्यों उनकी युद्ध के प्रति प्रवृत्ति कम होने लगती है। दृष्टान्त के तौर पर इंगलैण्ड को ही लीजिये। इंग्लैण्ड में पहिले पहिल लोग बड़ी प्रसन्नता से सेना में अपना नाम लिखाया करते थे परन्तु आजकल

यह है कि ये लोग जावा से मनुष्यों को चोरी करके दास बनाने के लिए ले जाते थे।"

इस उपरि लिखित वर्णन से पता लग गया होगा कि यूरोपियन राष्ट्रों को सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों पर चलने की कुछ भी परवाह नहीं है। स्वार्थ तथा धनने उनके दिमागों को चाट लिया है। उन्हे इस बात की कुछ भी परवाह नहीं होती है कि कौन सी बात कितनी बुरी है उन्हें तो अपनी जेबें भारनी है और इसके लिए दुनियां भर में ऐसी कोई बुराई नहीं है जिसको कि करने में वे सन्नद्ध न हो जावें। इस दशा में यदि उन्हें अपने व्यापार व्यवसाय को वृद्धि में युद्ध करना पड़े तो क्या वह रुक जावेंगे? इसका स्पष्ट उतर अद्यकालीन भयानक यूरोप का युद्ध ही है। सदाचार के अनुकूल ही विचार की उन्नति युद्ध के शान्त करने में समर्थ हो सकती हैं न कि विपरीत। उद्देश्य का राष्ट्रों के कार्यों पर जो प्रभाव पड़ता है वह मैं प्रस्तावना में ही दिखा चुका हूं।

यह बात नहीं रही है। अच्छे अच्छे आदमी सैनिक बनेने की अपेक्षा डाक्टर, वकील. इन्जीनियर आदि बनना अधिक पसन्द करते हैं। परिणाम इसका यह हुआ है कि सैनिक पेशा लोगों की नजर में आज कल गिर गया है। निचले श्रेणी के लोग ही इस पेशे के योग्य समझे जाने लग गये हैं। प्राचीनकाल में इससे सर्वथा विपरीत था। योग्य से योग्य विद्वान्, राज नीतिज्ञ पुरुष भी युद्ध कार्य में पूर्ण भाग लिया करते थे। सोलन, थौमिस्टीक्लोज़ तथा एपामिनोडस (Epaminodas) आदि यूनानी महा पुरुषों से कौन परिचित न होगा। सुक्रात, प्लेटो तथा अनिस्थनीज आदि की विद्वत्ता पर कौन सन्देह कर सकता है? परन्तु विचित्रता की बात है कि वे सबके सब महानुभाव सैनिक भी थे। सैकड़ों यूनानी विद्वान् गिनाये जा सकते हैं जो कि सैनिक के तौर पर भी जहां काम करते हैं वहां पुस्तक आदि लिखने के कार्य को भी नहीं छोड़ते हैं *। परन्तु आजकल यह बात नहीं रही

---

* कुछ एक यूनानी विद्वानों के नाम निम्न लिखित हैं जो कि जहां अप० समय में विद्वान् राजनीतिज्ञता आदि गुणों में गिने जाते थे वहां सैनिक भी थे।

आर्वटिस (Archytas) (२) मैलिस्सस (Melissus) (३) पैरीक्लस (Pericles) (४) आल्सि विआडस (Alcibiades) (५) आन्डसिडस (Andocides) (६) डिमास्थनीज़ (Demosthanese) (७) एस्किनीज़ (Aeschines) (८) साफोक्लीज़ (Saphocles) (९) आर्किलोकस Archilochus) (१०) टिर्टिअस (Tyrteeus) (११) आल्किअस (Alcaus) (१२)

है। १६ वीं सदी के बाद इंगलैण्ड में बहुत ही थोड़े ऐसे व्यक्त होते हैं जो कि जहां विद्वान् हों वहां सैनिक भी हों। राले (Ralaigh) तथा नेपियर (Napire) तथा इसी प्रकार के कुछ एक मनुष्यों को छोड़कर कोई भी ऐसा सैनिक नहीं मिलेगा जिसने संसार को अपने विचारों से कुछ भी लाभ पहुँचाया हो, काम्वल, वाशिंगटन, नैपोलियन, मार्लवारो तथा वैलिंगटन आदि गिन चुने व्यक्ति हैं जो कि जहां राज्य प्रबन्ध भी अच्छी तरह से कर सकते थे वहां वीर सैनिक भी थे। इस परिवर्तन का क्या कारण है? यदि इस पर विचार किया जावे तो पता लगेगा कि निम्नलिखित तीन कारण हैं।

(१) बारूद का आविष्कार

(२) संपत्ति शास्त्र का आविष्कार

(३) यानों का सुगम हो जाना।

इन पर अब हम एक एक करके विचार करना प्रारम्भ करेंगे।

बारूद का आविष्कार

कहा जाता है कि बारूद का आविष्कार १३ वीं सदी में होती है और १४ वीं सदीतक इसका व्यवहार युद्ध कार्य में अच्छी तरह से नहीं होता है* ज्यों ही बारूद का प्रयोग यूरोप में बढ़ा यूरोप की

थ्यूसीडिडस (Thucydides) (१३) जेनोफान (Xenophon) (१४) पालीबिग्रस (Polybius)।

* बारूद का आविष्कार १३ वीं सदी में हुआ यह कहना कठिन है इसमें सन्देह नहीं है कि जर्मनी में आक्लिज़ नामी फ्रान्सिस्कन फकीर बारूद का आविष्कारक समझा जाता था परन्तु आज कल की

युद्ध सम्बन्धी नीति में ही अन्तर पड़गया। बारूद के निकलने से पूर्व यूरोप में प्रत्येक व्यक्ति को सैनिक बनना पड़ता था तथा स्थिर सेनाएं न रखी जाती थीं। एक शब्द में इसीको यों कहा जासकता है कि उन दिनों में सारा का सारा यूरोप एक प्रकार से सैनिकों का निवासस्थान था। पादरियों को एकमात्र सैनिक होने से मुक्त किया हुआ था। इस प्रकार संपूर्ण यूरोप में यातो लोग पादरी होते थे या सैनिक। परन्तु ज्यों ही बारूद का प्रयोग यूरोप में बढ़ा वहां पर एक बड़ा भारी परिवर्त्तन आगया। बन्दूक तथा बारूद को साधारण जन न रख सकते थे क्योंकि ये दोनों ही चीज़े बेअन्त मंहगी थी। यही नहीं अग्न्यास्त्रों के प्रचलित हो जाने से युद्ध विद्या में भी चातुर्य की विशेष आवश्यकता होगयी। अतः कुछ लोगों को इस विद्या में निपुंणता प्राप्त करने के लिए पर्य्याप्त समय देने की आवश्यकता थी। इससे स्थिर सेना रखने की प्रथा अवलम्बन

रवाजों ने कुछ और ही प्रकट किया है। आक्लिज़ से बहुत वर्ष पूर्व रोजर बेकन Roger Becon नामी एक दूसरा फ्रासिस्कन फकीर शोरे के गुणों से अच्छी तरह से परिचित था। रोजर बेकन ने स्पेन से तथा स्पेन वालों ने सारासीन्ज़ (Saracans) लोगों से और उन्होंने स्वयं भारत वर्ष से बारूद बनाने की विद्या को सीखा था। आविष्कारों का इतिहास (History of Inventions and Discoveries) नामी पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक जोह्न बैकमैन का कथन है, "मैं सदा उनसे सहमत हूं जो सोचते हैं कि बारूद हिन्दुस्थान से आविष्कार हुआ और सारासीन्ज लोगों से आफ्रीका में लाया गया। आफ्रीका से यूरोप में बारूद बनाने की विद्या पहुंचती है तथा उसकी उन्नति की जाती है। समय के गुजरने के साथ २ बारूद के प्रयोग बीसें

की जाने लगी। सारांश यह है कि बारूद के प्रचलित होने के बाद ही यूरोप में सैनिकों तथा नागरिकों के बीच में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। इससे पूर्व न था। इस प्रकार यह पूर्ण तौर पर सिद्ध होगया कि किस प्रकार बारूद के आविष्कार से यूरोपियन जातियों की सैनिक पेशे की ओर प्रवृत्ति कम होगयी तथा युद्ध को ओर से उनका चित्त हट गया।

(२) संपत्ति शास्त्र का आविष्कार

यूरोप के अन्दर युद्ध की प्यास बुझाने में संपत्ति शास्त्रों ने भी बड़ा भारी भाग लिया है। संपत्ति शास्त्र का प्राचीनों को कुछ भी ज्ञान न था। **संपतिशास्त्र** के उदय से ही यूरोपियन जाति को यह मालूम पड़गया कि किस प्रकार **वाधित व्यापार** न करना चाहिए तथा व्यापारीय पदार्थों पर नट कर न लगाना चाहिए संपत्तिशास्त्र के उदय से पूर्व जातियों का विश्वास था कि देश की समृद्धि व्यापार द्वारा दूसरे देशों से सोना लाद लाद कर ले आने पर निर्भर करती है। वल्क महाशय की सम्मति है कि संपत्तिशास्त्र के निकल आने से अब यह बात नहीं

तरीके यूरोपियन लोगों ने पता लगा लिये।" हिन्दू कवि चन्द ने कई स्थानों पर अपनी कविता में 'नलगोला' का नाम दिखाया है उससे भी पता लगता है कि हो न हो बारूद का प्रयोग भारत में होता था। सिकन्दर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था उस समय उस पर भारतीय लोग आग्न्यास्त्रों का प्रयोग करते थे। यूनानियों को भारतियों के विषय में कथन है कि "भारतवासी लोग यूनानियों पर आग की वर्षा करते थे। अधिक क्या शुक्र नीति में तो बारूद बनाने का प्रकार लिखा है तथा उसमें क्या क्या चीजें किस किस अनुपात में पड़ती हैं यह भी दिया हुआ है।

रही है। आदम स्मिथ ने १७७६ में 'जातीय संपत्ति' (Wealth of nations) नामी पुस्तक छाप कर संसार का बड़ा भारी उपकार किया। इंगलैण्ड में 'अवाधित व्यापार' (Free trade) की इस पुस्तक के निकलते ही लहर चल गयी। परिणाम उसका यह होता है कि इंगलैण्ड स्वतन्त्र व्यापार के संसार के सब देशों में प्रजलित हो जाने पर बल देने लगता है और कुछ समय बाद स्वयं 'स्वतन्त्र 'व्यापारी' देश हो जाता है। वाधित व्यापार के सिद्धान्त के तह में यह विद्यमान है "कि प्रत्येक देश एक दूसरे का शत्रु है।" परन्तु स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त में भ्रातृभाव काम करता रहता है।* इस प्रकार

---

* महाशय वर्क के समय में संपत्ति शास्त्र ने शास्त्र का रूप धारण न किया था। संपत्ति शास्त्र के सिद्धान्त पूर्णतौर पर सत्यता को प्रकट करने वाले न थे। वाधित व्यापार तथा अवाधित व्यापार में कौन ठीक है यह कहना कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि यह जातियों की अपनी अवस्था पर निर्भर करता है। असभ्यावस्था में जहां जातियों के लिए स्वतन्त्र व्यापार भी लाभदायक है वहां उन्नतिशील व्यापार व्यवसाय में प्रबल होने की इच्छुक जातियों के लिए वाधित व्यापार ही श्रेयस्कर है। अत्यन्त उन्नत जातियों के लिए पुनः अवाधित व्यापार लाभप्रद हो जाता है। इङ्गलैण्ड वाधित व्यापारी देश एलिजावेथ के समय में तथा उसके बाद तक था। परन्तु जिस समय भारत का व्यापार व्यवसाय नष्ट हो गया तथा इङ्गलैण्ड का व्यापार व्यवसाय सारे संसार में चमक गया। उस समय इङ्गलैण्ड अवाधित व्यापारीय देश हो गया। कुछ समय तक तो यूरोपियन जातियां इङ्गलैण्ड के 'भ्रातृभाव' तथा अवाधित व्यापार के चक्कर में रही परन्तु शीघ्र वह संभल गयी। जर्मनी वाधित व्यापारीय देश हो गया। इङ्गलैण्ड के

सिद्ध हो गया कि किस प्रकार संपत्ति शास्त्र के कारण यूरोप में भ्रातृभाव की ओर प्रवृत्ति हो गयी तथा भ्रातृभाव की प्रवृत्ति के द्वारा युद्ध की ओर यूरोपियन जातियों का झुकाव कम हो गया।

यानों का सुगम हो जाना

यानों के सुगम तथा शीघ्र गामी हो जाने से जातियों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ट हो गया। प्रत्येक जाति एक दूसरी जाति के गुणों से अच्छी तरह परिचित हो गयी। इस दशा में जहां मैत्री भाव जातियों के अन्दर बढ़ गया वहां चिरकाल से चली आयी पार-

---

उपनिवेश कनाडा तथा आस्ट्रेलिया तक वाधित व्यापार के पक्षपाती हैं। इस दशा में वक्ल महाशय के कथन को किस प्रकार सत्य माना जा सकता है। आदम स्मिथ के जमाना गुजरे देर हुई यद्यपि वह एक विद्वान् पुरुष था। परन्तु उसने जो असत्य सिद्धान्त निकाले उनका अवलम्बन करना कैसे श्रेयस्कर हो सकता है। इङ्गलैण्ड के भारत के प्रति अवाधित व्यापार ने जो भारत को हानि पहुंचायी है वह किसी से छिपी नहीं है। बीस बीस वर्षों में अवनत से अवनत देश उन्नति के शिखर पर पहुंच गये हैं परन्तु भारत वर्ष अभी तक पीछे ही पड़ा हुआ है। यह क्यों? इसका कारण भारत की व्यावसायिक नीति का ही अनुचित होना है। वक्ल महाशय ने वाधित व्यापार में 'पारस्परिक शत्रुता' को आधार प्रकट किया है वह हमें कुछ भी ठीक नहीं प्रतीत होता है क्योंकि वाधित व्यापार का आधार 'स्वरक्षण' भी हो हो सकता है। यदि आत्मरक्षण बुरा हो सकता है तो वाधित व्यापार भी बुरा हो सकता है। पुराने व्यवसायों से नये व्यवसायों का मुकाबला करना अति कठिन है। बिना, वाधित व्यापार के नये व्यवसायों की उन्नति करना दुःसाध्य है।

स्परिक घृणा का भी सर्वथा लोप हो गया। आंग्ल तुच्छ लेखकों की कलम भी चलनी रुक गयी जिनका कि काम फ्रेञ्च जाति की निन्दा करके आंग्ल जनता को ही प्रसन्न करना था। फ्रेञ्च जनता की आंग्लों के प्रति घृणा भी पारस्परिक सम्बन्ध के बढ़ जाने से बहुत ही कम हो गयी। सारांश यह है कि यानों के उत्तम हो जाने से सारा संसार एक दूसरे से जुड़ गया यूरोपियन जातियां एक दूसरे को मान्य की दृष्टि से देखने लग पड़ी। शत्रुता तथा घृणा का एक बड़ा कारण 'अज्ञानता' कहा जा सकता है। परन्तु अज्ञानता का उच्छेद पारस्परिक परिचय से बड़ी आसानी से हो जाता है। वाष्पीय यानों ने जो कुछ किया वह यही किया। बक्ल महाशय का कथन है कि प्रत्येक रेल की सड़क की वृद्धि तथा प्रत्येक नवीन वाष्पीय नौका का इङ्गलिश चैनल को पार करना इस बात की सूचना है कि अब शान्ति दिन पर दिन बढ़ती जावेगी तथा जातियों के स्वार्थ एक दूसरे से दिन पर दिन मिलते जावेंगे *। इस प्रकार

---

* महाशय बक्ल का यह कथन कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। शान्ति की स्थिरता में उत्तम यान कभी भी कारण नहीं हो सकते हैं। क्योंकि उत्तम यान तो साधन है जिस प्रकार तलवार को हानिप्रद या लाभप्रद होना मनुष्य की बुराई तथा अच्छाई पर निर्भर करता है उसी प्रकार यानों का उत्तम होना भी। उत्तम यानों से यूरोपियन जातियों ने जो खून की नदी के बहाने का काम लिया है वह किसी से आज तक छिपा नहीं है। उद्देश्य पवित्र तथा शुभ होना चाहिए। शान्ति स्वयं ही आ जाती है। यानादि तो साधन होते हैं। यह शान्ति में तो शान्ति बढ़ाया करते हैं, कलह में कलह इत्यादि २।

विस्तृत तौर पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि किस प्रकार बारूद, संपत्तिशास्त्र तथा उत्तम यानों के निकल आने से यूरोप में युद्ध की ओर से जनता की प्रवृत्ति हट गयी। सामाजिक उन्नति में सदाचार कारण नहीं है यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। अब प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि सामाजिक उन्नति के वास्तविक कौन से कारण हैं? इसका उत्तर यह है कि सामाजिक उन्नति के एक मात्र तीन कारण हैं।

(१) जनता के योग्य २ मनुष्यों की कितनी विद्या है?

(२) जनता के योग्य २ मनुष्यों की विद्या विज्ञान सम्बन्धी किन २ विषयों में रुचि है?

(३) जनता में विद्या का प्रचार कहां तक है?

ये तीन ही शक्तियां प्रत्येक सभ्य समाज को घुमाने वाली हैं। यद्यपि इन तीनों शक्तियों के कार्य समाज के महान् पुरुषों द्वारा रोके या बढ़ाये जाते हैं तथापि यदि लम्बे समय को ध्यान में रखा जावे तो यह कहा जा सकता है कि उन पर महान् पुरुष कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। कुछ एक ऐसे कारण काम कर रहे हैं (जिनका कि हमको ज्ञान नहीं है) जिनसे समाज के आचार में परिवर्त्तन होता रहता है। कभी एक सदी में समाज का आचार उच्च होता है, तो कभी नीचा। परन्तु इस आचार के ऊंचे नीचे होने से समाज पर कोई स्थिर प्रभाव नहीं पड़ता है। समाज का अन्तरीय आचार सदा एक रस रहता है। उसमें किसी प्रकार की उन्नति नहीं होती है। क्योंकि समाज की अच्छाइयां बुराइयां एक दूसरे

को काटती रहती हैं। क्रूरता उदारता से, कष्ट सहानुभूति से, अन्याय पुण्य से, कटते रहते हैं जो कुछ बचता है वह शून्य ही है। अर्थात् समाज में सभी प्रकार के लोग रहते हैं, अच्छे भी, बुरे भी। समाज में जहां कुछ एक व्यक्तियों ने अच्छाइयां की वहां दूसरों ने बुराइयां परिणाम क्या होता है ? समाज पर वैयक्तिक अच्छाई और बुराइयों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। सिकन्दर तथा नैपोलियन ने मनुष्य जाति को खूब लताड़ा तथा अपनी इच्छाओं के अनुसार चलाया परन्तु उनके संसार से सदा के लिए विदा हो जाने पर उन के सब के सब समाज से विपरीत काम शनै २ स्वयं ही लुप्त हो जाते हैं तथा समाज पुनः अपने पुराने मार्ग पर आ जाता है। सारांश यह है कि महान् पुरुष समाज की उन्नति या अवनति के करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं। क्योंकि समाज के वे पुत्र होते हैं न कि समाज उनकी। परन्तु। बुद्धिमान् पुरुषों के आविष्कार कभी भी नहीं मिटा करते हैं वे अमर होते हैं। उनमें वह सत्यता विद्यमान होती है जिसको कि संसार की कोई भी शक्ति मिटा नहीं सकती है। एक आविष्कार से दूसरा आविष्कार उत्पन्न होता है दूसरे से तीसरा तथा तीसरे से चौथा इत्यादि। आविष्कार उत्पादक होते हैं अतः आविष्कारों कों अमरण धर्मा तथा नित्य कहना अत्युक्ति करना न होगा। इस उत्पादकता गुण से ही उनके सामाजिक उन्नति का वीज गुप्त तौर पर छिपा रहता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि सदाचार का सामाजिक उन्नति पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि

किसी का विशेष प्रभाव पड़ता है। तो वह विचार ही है क्योंकि प्रथम जहां उत्पादक नहीं है वहां दूसरा उत्पादक है और इस उत्पादकता गुण से ही विचार सामाजिक उन्नति में कारण हो जाता है।

चतुर्थ परिच्छेद

धर्म, साहित्य तथा राज्य का सभ्यता पर प्रभाव

धर्म का सभ्यता की उन्नति पर प्रभाव

यदि जन समाज को अपने ऊपर छोड़ दिया जा वेतो स्पष्ट हो सकता है कि उसका धर्म, साहित्य, तथा राज्य उस की सभ्यता का कारण नहीं है अपितु कार्य है। विशेष प्रकार की अवस्था के विशेष परिणाम स्वभावतः ही निकला करते हैं। इस में संदेह नहीं है कि उन परिणामों पर यदि बाह्यस्थिति का कुछ भी प्रभाव न पड़े तो विचार तथा तर्क से युक्त अतिसभ्य समाज के लिए यह असम्भव ही है कि उसका धर्म उन बेहूदी बातों से परिपूर्ण हो वे जो कि सर्वथा ही प्रत्यक्ष हों। धर्म परिवर्त्तन करने के बीसों दृष्टान्त हैं परन्तु एक परित्यक्त धर्म के पुनर्ग्रहण करने का दृष्टान्त किसी समाज का भी इतिहास नहीं दिखा रहा है। विचार शक्ति को विना कार्य में लाये धर्मों की बुराइयों तथा अच्छाइयों का पता लगाना कठिन है। असभ्य जाति के मनुष्य प्राकृतिक॰ परिस्थितियों से प्रभावित होकर बहुत से देवताओं को मानने लगते हैं। परन्तु तर्क तथा विचार से परिपूर्ण सभ्य समाज इस प्रकार की असत्य बातों पर संदेह प्रकट करते हुए उन्हें छोड़ देते हैं। इस दशा में यह कहना कितना हास्यप्रद होगा, असभ्य जातियों में अज्ञानता इस लिए थी क्योंकि उनका धर्म ठीक न था और

सभ्य जातियों का चूंकि धर्म ठीक है अतः उनमें विद्या तथा ज्ञान है।" सारांश यह है कि विद्या तथा ज्ञान ही धर्म के कारण हैं, इसमें उलट पुलट करना सत्यता से दूर जाना होगा। अज्ञानी सभ्य पुरुषों में किसी धर्म के फैलाने के जो प्रभाव होते हैं वह ईसाई पादरियों की पुस्तकों से पता लगाये जा सकते हैं। ईसाइयों ने अफ्रीका के जंगलियों में अपना धर्म प्रचार किया। परिणाम इसका यह हुआ कि असभ्य जंगली ईसाई हो गये। परन्तु यह उनका ईसाईपना नाम का ही समझना चाहिए। क्योंकि जो कुछ ईसाई धर्म से उन्होंन लिया वह उसके रीति, रिवाज तथा संस्कार ही थे, वास्तविक धर्म का उन्हें तृणमात्र भी वोध नहीं हुआ। वे अपने बालकों को वप्तिस्मा देते हैं, चर्च में जाते हैं, इतना होते हुए भी उनका उस धर्म में कुछ भी प्रवेश नहीं है। धर्म बाह्य दिखावटों से सर्वथा भिन्न हुआ करता है। बाह्य दिखावटों को सीखना तथा उस पर आचरण कोई कर सकता है परन्तु धर्म को समझ लेना एक अत्यन्त कठिन बात है। इसके लिए विद्या तथा ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है। असभ्य जंगली जातियों की यदि अज्ञानता को सर्वथा ही दूर कर दिया जावे उस दशा में वह धर्म को पूर्ण तौर पर समझ सकती हैं। सारांश यह है कि कोई धर्म किसी असभ्य समाज में तभी फैल सकता है जब कि उसकी अज्ञानता को दूर कर दिया जावे। मेरा जहां तक ईसाई पा-पादरियों के इतिहास से परिचय है वहां तक मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि किसी भी असभ्य जाति में अभी तक ईसाइयों ने सफलता नहीं प्राप्त की है। इसमें संदेह भी नहीं है

कि कुछ एक विद्वान् सदाचारी पादरियों ने अपनी सत्संगति तथा प्रबल प्रयत्न से कुछ एक स्थानों के असभ्यों को शिक्षित कर उन्हें वास्तविक ईसाई बना कर अन्य ईसाई पादरियों को सफलता का मार्ग दिखाया है परन्तु यह घटना भी उसी बात को पुष्ट करती है जिस पर कि हम अबतक बल देते आये हैं। उपरि लिखित दृष्टान्तों तथा युक्तियों से यह सिद्ध हो गया है कि भिन्न भिन्न समाजों के धर्म, उनकी उन्नतियों के कार्य तथा परिणाम हैं न कि कारण। इसमें संदेह नहीं है कि भिन्न भिन्न समय में समाज के अन्दर उत्पन्न महापुरुष समाज की गति को बदलने का यत्न करते हैं परन्तु उनकी सफलता तथा असफलता समाज पर ही निर्भर करती है। उनके सुधारों के ग्रहण करने में यदि समाज पूर्व से ही सन्नद्ध न हो तो उनके सुधार समाज में कभी भी प्रचलित नहीं हो सकते हैं। क्या कारण है कि प्रायः महापुरुषों को समाज के लिए अपने जीवन को बलि करना पड़ा है? यह इसी लिए कि समाज उनके विचारों को समझने में सर्वथा ही असमर्थ था अतः उसने ऐसे व्यक्तियों से अपने आपको सदा के लिए छुड़ाने का यत्न किया। परन्तु ज्यों ही विचार सम्बन्धी परिवर्त्तन किसी समाज को नवीन उन्नतियों तथा सुधारों के समझने के योग्य बना देते हैं त्योंहि वह समाज उन सुधारों को ग्रहण कर लेता है। जिसके कारण उसने अपने एक महापुरुष को सदा के लिए खो देना ही पसन्द किया था। सारांश यह है कि महापुरुषों का समाज की सभ्यता के इतिहास में वही महत्व है जो कि एक भविष्य वाणी कहने वाले पुरुष का किसी भावी कार्य में। इति-

हास में ऐसे दृष्टान्त भी मिलते हैं जब कि अच्छे से अच्छे सिद्धान्तों को समाज ने देर तक न माना हो क्योंकि वह उन सिद्धतों को अन्त तक भी समझने के योग्य न हो सका। प्राचीन यहूदियों को एक ईश्वर मानने का उपदेश भी मिला परन्तु उन्होंने अन्त तक मूर्त्ति पूजा को न छोड़ा। उस सचाई को मानने के लिए बीसों प्रकार की कठोरता तथा क्रूरताओं द्वारा उन्हें बाधित भी किया गया परन्तु उन्होंने 'एक ईश्वर' को नहीं माना और चिरकाल तक मूर्त्ति पूजा को करते ही रहे। क्योंकि उनमें अज्ञानता तो पूर्ववत् ही बनी रही थी इस दशा में उनका किसी सत्य सिद्धान्त को ग्रहण करना कठिन ही था। सारांश यह है कि "ज्ञान" में तथा 'विचार' में परिवर्त्तन हुए विना धर्म में किसी समाज का भी परिवर्त्तन करना कठिन है। यदि इसी सच्चाई के लिए हम अन्य दृष्टान्तों को और देखना चाहते हैं तो 'ईसाई धर्म' के अन्दर से प्राप्त हो सकते हैं। आदि आदि में रोमन असभ्य तथा अज्ञानी थे। उस दशा में उनका मूर्त्तिपूजक होना स्वाभाविक ही था। उनमें एक 'ईश्वर' का प्रचार करना चाहा परन्तु उन्हें यह कब स्वीकृत हो सकता था। पहिले तो रोमनों ने ईसाइयों को अनेक कष्ट पहुँचाये परन्तु अन्त में रोमनों को ईसाई धर्म का अवलम्बन करना ही पड़गया। ईसाई धर्म को उन मूर्त्ति पूजाकों के प्रवेश से लाभ के स्थान पर हानि ही पहुँच गयी। क्योंकि इन लोगों ने ईसाई, धर्म को भी अपने धर्म के सदृश ही बना दिया। रोमन के विचारों में तो किसी प्रकार कि उन्नति न हुई, उनके विश्वास पूर्ववत् ही बने रहे, परन्तु उन्होंने ईसाई धर्म को ग्रहण कर लिया। परिणाम इसका यह

हुआ कि उन्होंने इन सब भ्रमात्मक विश्वासों का ईसाई धर्म में प्रवेश कर दिया। यही कारण था कि जहां उन्होंने मूर्त्तियों की पूजा छोड़ी वहां भिन्न २ प्रचारकों (Saints) की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी तथा ईसाई धर्म के पुराने संस्कारों को अपने प्राचीन संस्कारों का रूप दे दिया। सौभाग्य की बात है कि कुछ शताब्दी पूर्व यूरोप में एक प्रबल लहर चली जिसने जहां ईसाई धर्म की अपवित्रता को दूर किया, वहां जन समाज के विचारों को उन्नत तथा स्वतन्त्र किया। यूरोप में प्रोटेस्टैन्ट तथा कैथोलिक्स धर्मावलम्बियों के जो द्रोह हुए हैं उनके कारण समाज को बहुत ही अधिक हानि हुई है। राज्य बहुत वार अपनी सीमा को पार कर ऐसी ऐसी बातों में हस्ताक्षेप कर दिया करते हैं जहां कि उसे हस्ताक्षेप सर्वथा न करना चाहिए। यूरोप में जो धार्मिक युद्ध हुए हैं, उनमें "राज्य" का बड़ा भारी हाथ था। राज्य ने अपने आपको व्यक्तियों के धर्म का रक्षक भी बना लिया। इसका जो कुछ परिणाम होना था वह यूरोप ने पूर्णतौर पर देखा। कैथोलिक्स मत का प्रोटेस्टैन्ट मत से ऐसा ही अन्तर है जैसा कि किसी असभ्य जाति का सभ्य जाति से कैथोलिक्स मत में भ्रमात्मक विश्वासों का भरमार है। बीसों प्रकार की बेहूदी बातें उसमें प्रविष्ट हैं परन्तु प्रोटेस्टैंट मत में कैथोलिक्स मत की अपेक्षा बहुत सी अधिक अच्छी बातें हैं। इसने कैथोलिक्स मत की बहुत सी बुरी बातों को दूर करने का यत्न किया है तथा उसमें सुधार भी बहुत से किये हैं। सारांश यह है कि प्रोटेस्टैन्ट मत जहां उन्नत सभ्य-जातियों के लिए उपयुक्त है वहां कैथोलिक्स मत अवनत

अर्ध सभ्य जातियों के लिए। परन्तु इस स्वाभाविक क्रम को यूरोपियन धार्मिक युद्धों ने सर्वथा भग्न कर दिया। यदि धर्म के मामले में जातियों के साथ बलात्कार न किया जाता तथा युद्ध न छेड़ा जाता तो जो जो जाति विचारों में उन्नत होती जाती वह अपने आप से ही कैथोलिक्स मत को त्याग कर प्रोटेस्टैन्ट मत की अवलम्बक हो जाती और जो जाति उन्नति की ओर शीघ्रता से पैर न बढ़ाती वह कैथोलिक्स मत में ही पड़ी रहती।

अब यूरोपियन जातियों की अवस्था विचित्र है। फ्रांस जहां कैथोलिक्स मत का अवलम्बी है वहां उसमें कई एक प्राटे-स्टैन्ट जातियों की अपेक्षा भी भ्रमात्मक विश्वास कम है। फ्रांस तो इतिहास में स्वतन्त्र विचारक के तौर पर प्रसिद्ध हैं। स्काट् लैण्ड में प्रोटेस्टैन्ट मत का प्रचार है परन्तु स्काट्-लैण्ड में प्रोटेसटैन्ट मत नाम मात्र का ही समझना चाहिए। स्काच जनता बहुत ही अधिक भ्रमात्मक विश्वासों से युक्त है। उसके विचार भी अति संकुचित है। यदि राज्य धर्म में हस्ताक्षेप न करते तो यह विचित्र घटना क्यों उपस्थित होती इतने स्वतन्त्र विचारों के रखते हुए भी फ्रेंच जनता क्यों मुख्यतः कैथोलिक्स होती तथा स्काच् भ्रमात्मक विश्वासों तथा संकुचित विचारों के साथ भी प्रोटेस्टैन्ट। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कई वार जातियां अपने धर्म की अपेक्षा स्वतः अधिक योग्य होती हैं और कई वार अयोग्य ?

इसी कारण से राज्य तथा धर्म को सभ्यता का कारण बताना मूर्खता करना है। क्योंकि यदि कोई धर्म जनता के लिए आवश्यक तथा उपयुक्त होवेगा तो जनता उसको स्वयं

ही ग्रहण कर लेवेगी और यदि अनुपयुक्त तथा अनावश्यक होवेगा तो जनता उसको स्वयं ही छोड़ देवेगी। इस दशा में राज्य का किसी धर्म के प्रचार में हस्ताक्षेप करना सर्वथा निरर्थक प्रतीत होता है। इस प्रकार धर्म तथा राज्य का सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रभाव दिखला कर के अब हम "साहित्य का सभ्यता की उत्पत्ति पर क्या प्रभाव है" इसको दिखलाने का यत्न करेंगे।

साहित्य का सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रभाव

धर्म का सभ्यता के साथ क्या संबन्ध है यह अभी पूर्ण तौर पर दिखाया जा चुका है। धर्म के सदृश ही साहित्य का सभ्यता के साथ संबन्ध है अतः इस पर विस्तृत तौर पर लिखना अनावश्यक ही प्रतीत होता है साहित्य को हम किसी देश के ज्ञान तथा ज्ञान का भंडार कह सकते हैं। साहित्य का सदा अच्छा ही अच्छा होना आवश्यक नहीं है। अच्छे या बुरे साहित्य का अनुशीलन करना बहुत कुछ जनता की रुचि पर निर्भर किया करता है जिस प्रकार धर्म के अन्दर बहुत से महापुरुषों की सत्ता हुआ करती है जिनके कि आचार तथा विचार अपने समय के समाज की अपेक्षा किसी सीमा तक ऊंचे होते हैं उसी प्रकार साहित्य में भी ऐसे महा पुरुषों की सत्ता होती है जिनका कि ज्ञान तथा विचार अपने समय के समाज की अपेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ा हुआ होता है। यदि किसी समय समाज तथा उसके विद्वान् महापुरुषों के ज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर पड़ जावे उस समय जहां प्रथम दूसरों से कुछ भी लाभ नहीं मिल सकता है वहां दूसरे प्रथम को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा सकते हैं तथा उनका

समाज पर प्रभाव भी कुछ नहीं होता है। प्राचीन काल में जो कुछ था वह यही था। रोमन तथा ग्रीक्स ने जिस सभ्यता को अत्यन्त प्रयास से बढ़ाया वह चिरकाल तक न ठहर सकी क्योंकि जहां उच्च विचारक दार्शनिक लोग अपने ज्ञान में बहुत ही अधिक थे वहां साधारण जनता मूर्त्ति पूजा में लिप्त अज्ञान सागर में ही निमग्न थी। यही दशा वर्त्तमान काल में जर्मनी की है। इसमें संदेह नहीं है कि जर्मनी ज्ञान, विज्ञान, विचार में संसार का महा विद्यालय (Univercity) बना हुआ है परन्तु इस उच्च दशा तक जर्मनी को पहुंचाने वाले वहां के कुछ एक महापुरुष ही हैं, जनता अभी तक इतनी अज्ञानता में है कि उन विचारों से कुछ भी लाभ उठाने में समर्थ नहीं है। सारांश यह है कि साहित्य को तो किसी जाति के 'कोष' से उपमा दी जा सकती है, जिसमें ज्ञान रूपी सम्पत्ति भरी हुई है और जिसको प्राप्त करना या न करना किसी जनता के साहस, चातुर्य तथा उद्यम पर निर्भर करता है। प्राचीन पुस्तकों के बचाने में प्रयास करना ऐसा ही है जैसा कि खजाने से लुटाते हुए तथा नष्ट करते हुए उस मकान की रक्षा करना जिसमें खज़ाना रखा हो। जातियों को प्राचीन पुस्तकों से जो कुछ मिल सकता है वह ज्ञान है। परन्तु यदि कोई जाति ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर प्राचीन पुस्तकों के बचाने में ही अपना तन मन धन समर्पित करती हो तो उस जाती से बढ़कर मूर्ख जाति कौन हो सकती है ? यूरोप में मध्य काल में भिन्न जातियों ने जो मूर्खता की वह यही मूर्खता थी। दृष्टान्त के तौर पर छठी शताब्दी से लेकर दसवीं सताब्दी तक यूरोप में मुश्किल से

तीन या चार योग्य विद्वान् उत्पन्न हुए थे जब कि सारी की सारी जनता अज्ञानान्धकार में भटक रही थी। जनता में कुछ एक शिक्षित, "जो कुछ अक्षर पढ़े लिखे हुए भी थे" अपना सम्पूर्ण समय धार्मिक गपोड़ों के पढ़ने ही में काटते थे। उन्हें भिन्न भिन्न ईसाई पादरियों के विषय में प्रचलित असंख्य किंवदन्तियों के सुनने तथा पढ़ने में ही आनन्द आता था। जितना जितना साहित्य को जनता उस समय पढ़ती थी उतना ही उतना उसका किस्से कहानियों पर विश्वास बढ़ता जाता था और वह उन्हें सत्य मानती जाती थी। अर्थात् जितनी जितनी शिक्षा बढ़ती जाती थी उतनी उतनी अविद्या जनता में घर कर रही थी। यह कहना कि उस समय अच्छी पुस्तकों का अभाव था सर्वथा दूसरों को अज्ञान में डालना होगा। जो कुछ उस समय बुरा था वह यही था कि अच्छी पुस्तकों के पढ़ने की जनता को रुचि न थी। रोम तथा ग्रीस का उच्च साहित्य यूरोप में विद्यमान था। परन्तु उससे उस जनता को क्या लाभ पहुंच सका था जिसकी कि उस साहित्य में रुचि ही न हो। उन दिनों में जनता तो उस साहित्य को एक भूत के सदृश समझती थी जिससे जहां वह कांपती थी वहां उससे दूर ही दूर रहने का यत्न करती थी। जो व्यक्ति सत्यता को प्रकट करने का यत्न भी करते थे उन्हें भी अपनी जान की आशा सदा के लिए छोड़ देनी पड़ती थी। यूरोप में बहुत समय तक लैटिन भाषा यूरोप के शिक्षित समाज की भाषा रही है और उस समय जनता यदि लैटिन की अच्छी अच्छी विद्या विज्ञान से परिपूर्ण पुस्तकों को पढ़ना चाहती तो पढ़ सकती थी। परन्तु उन्होंने रद्दी पुस्तकों को

ही पढ़ना पसन्द किया उन्होंने हीरे की अपेक्षा लोहे को ही अच्छा समझा। प्रत्येक साहित्य में अच्छाई और बुराईयां विद्यमान रहती हैं। अतः उससे लाभ उठाने के लिए विशेष चातुर्य तथा साहस की आवश्यकता होती है। इन सबका भाव यह है कि धर्म के सदृश नवीन साहित्य को ग्रहण करने के लिए जनता को पूर्व से ही सन्नद्ध होना आवश्यक है। यदि कोई धर्म या साहित्य जनता की अवश्यकता को पूर्ण नहीं करता है तो वह उस जनता को कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता है चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न होवे। और यही कारण है कि कई वार अच्छी सी अच्छी पुस्तकों को नहीं पढ़ा जाता है और अच्छे से अच्छे धर्मों की ओर घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

राज्य का सभ्यता की उत्पति पर प्रभाव

आजकल प्रायः विद्वानों की यह सम्मति है कि यूरोप के वर्त्तमान कालीन सभ्यता की उत्पत्ति में उनकी शासन पद्धति को ही विशेष महत्व दिया जा सकता है। भिन्न भिन्न यूरोपियन देशों के शासकों ने जिस बुद्धिमत्ता से अपने देश की बुराइयों को दूर करने का यत्न किया तथा अच्छाइयों को देश में लाने का यत्न किया। यह किसी भी इतिहासज्ञ से छिपा हुआ नहीं है। वक्ल महाशय की सम्मति में यह विचार सर्वथा भ्रममूलक है। वे कहते हैं कि किसी भी देश के शासक उसी समाज के विचारों में पले हुए होते हैं तथा वे उसी के धर्म में तथा साहित्य में अपने आप को उन्नत करते हैं जिस पर कि वे शासन करने के लिए प्रवृत्त होते हैं इस दशा में वे उसी समाज के 'एक

पुत्र" ठहरे न कि उसके पिता। उनके विचार सामाजिक उन्नति के परिणाम ठहरे न कि कारण। यह इतिहास से सिद्ध किया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं है कि समाज के अन्दर योग्य योग्य विचारक समाज के दूषणों को तथा उनके दूर करने के उपायों को बहुत पूर्व समय में ही प्रकट कर दिया करते हैं। परन्तु उनके उच्च विचारों का समाज अवलम्बन तभी करता है जब कि वह किसी विशेष परिस्थति से बाधित हो जाता है। अवलम्बन करने के अनन्तर ही वह उन विचारकों के महत्व को समझता है तथा उनको ऐतिहासिक पुरुषों में एक उच्च स्थान देता है। दृष्टान्त के तौर पर इङ्गलैण्ड के इतिहास में से धान्य नियमों (Corn Low) के हटाये जाने के दृष्टान्त को ले लीजिये। आंग्ल इतिहास से अनभिज्ञ जन तो जहां यह कहेंगे कि चूंकि उस समय पार्लियामेंट विशेष बुद्धिमान् थी अतः उसने बुरे धान्य नियमों को हटा दिया वहां दूसरे जन यह कहेंगे कि यह घटना इस लिए घटित हुई चूंकि उस समय धान्य मियम विरोधिनी समिति (Auti Corn, Law League) बनी हुई थी। परन्तु जो लोग आंग्ल इतिहास को गंभीरता तथा विचार पूर्णता से पढ़ते हैं वे यही कहेंगे कि राज्य, पार्लियामेंट, तथा समिति आदि तो उस प्रभाव के एक मात्र साधन हैं जो कि प्रवाह उनमें चिरकाल से चल रहा था। विशेष तो इस विषय पर हम आगे चलकर ही कहेंगे परन्तु यहां पर इतना कह देना तो आवश्यक ही प्रतोत होता है कि अट्ठारवीं सदी के मध्य से ही आंग्ल संपत्ति शास्त्रज्ञों ने बाधित व्यापार (Protection) के विरुद्ध एक प्रबल आवाज़ उठायी थी जिसका प्रभाव समाज

पर कभी न कभी तो अवश्यमेव पड़ता ही था। संपत्ति शास्त्रज्ञों के विचारों के कारण ही धान्य नियमों पर विशेष विचार जाति के अन्दर प्रारम्भ हो गया। उस विवाद का जो कुछ निर्णय हुआ वह यह कि धान्य नियम इङ्गलैण्ड में से हटा दिये गये। सारांश यह है कि इस प्रसिद्ध घटना का कारण 'विचार वृद्धि' ही का कहना उचित है। राज्य तथा पार्लियामेण्ट आदि तो उन विचारों के कार्य रूप में ले आने के साधन हैं जो कि समाज में विशेष तौर पर प्रचलित हों। यहां पर यह कभी भी न भूलना चाहिए कि राज्य अपनी शक्ति को बुरी तरह से भी प्रयुक्त कर सकता है और करता भी रहा है। राज्यों ने अपनी प्रजाओं के प्रत्येक कार्य में हस्तात्तेप किया परिणाम इसका यह हुआ कि प्रजाओं को व्यर्थ के बहुत से कष्ट उठाने पड़े, यूरोप के कई एक देशों के राज्यों ने तो समाज की उन्नति में इतनी बाधाएं डाली हुई हैं कि समाज की उन्नति उन उन उन देशों में बिलकुल रुक सी गयी है। उन राज्यों की बुराइयों का पता इसीसे लगाया जा सकता है कि देश में नियम तथा अपराधों के दण्ड को प्रचलित करने के अतिरिक्त जो कुछ भी उन्होंने किया वह सब गलत ही गलत किया। वर्त्तमान कालीन युग में व्यापार से जनता को जो जो लाभ पहुँचे हैं उनका वर्णन करना कठिन है। परन्तु प्रत्येक यूरोपियन राज्यों ने ऐसे नियम बनाये हैं, जिनको देखने से तो यह मालूम पड़ता है कि उनका उद्देश्य व्यापार को बढ़ाने के स्थान पर व्यापार का नाश करना है। इसके स्थान पर कि जातीय व्यवसायों को स्वतन्त्र बढ़ने दिया जाता उसे नियमों द्वारा बढ़ने से

सर्वथा रोक दिया गया है। इसमें संदेह नहीं है कि वह नियम भिन्न भिन्न राज्यों ने अपने देश के व्यापार व्यवसाय के लाभ के लिए ही बनाये हैं। परन्तु उससे जो कुछ हुआ वह नुक़सान ही हुआ। कुछ वर्षों से एकमात्र इङ्गलैंड ने ही इस रहस्य को समझा है और यही कारण है कि उसने व्यापार व्यवसाय में अपना हस्तात्तेप करना छोड़ दिया है। कुछ ही समय हुए कि एक विद्वान् ने लिखा है कि यदि उस समय चोरी चोरी व्यापारी लोग दूसरे देशो में सामान न भेजते तो व्यापार का सत्यानाश हो चुका होता। उस विद्वान् का कथन कितना ही अत्युक्ति पूर्ण क्यों न हो परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उस युग में व्यापार इतना अधिक न था जितने कि विघ्न। इसका जो परिणाम होना था वह पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। यही नहीं, इसी विषय पर जितना जितना हम अधिक विचार करते जाते हैं उतना ही उतना आश्चर्य बढ़ता जाता है। उन दिनों में भिन्न भिन्न राज्यों ने जहां लोगों की भ्रांति तथा लाभ आदि को राज्य नियमों द्वारा निश्चित करने का यत्न किया था वहां पदार्थों के मूल्य तथा पूंजी के ब्याज को भी निश्चित करने में कोई कसर न छोड़ी थी परन्तु इन राज्य नियमों के द्वारा जातियों की जो आर्थिक हानियां पंहुची यदि उनका विचार कुछ भी न किया जावे तब भी आचार सम्बन्धि हानियों को तो कभी भी नहीं भुलाया जा सकता है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि इस प्रकार के राज्य नियमों का जनता पर क्या प्रभाव हुआ था कि उनमें से बहुत से लोग राज्य नियमों को कुचलते हुए चोरी २ अपने माल को दूसरे देशों में भेजते थे

तथा वहां से बहुत सा माल अपने देश में मंगावे थे । इस कार्य से जाति के आचार पर जो धक्का लगा उन सबका दोषी राज्य को ही कहना चाहिए क्योंकि उसके कार्यों के कारण ही इस प्रकार की बुरी बातों ने जाति के अन्दर जड़ पकड़ी। उपर्रि लिखित संपूर्ण बातों से जो कुछ हमें सिद्ध करना है वह यही है कि राज्य को सभ्यता की उत्पत्ति में कारण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि वह समाज के उद्देश्य पूर्त्ति का साधन है न कि सामाज को अपनी इच्छानुसार किसी ओर चलाने वाला। परन्तु इन सब आक्षेपों से यह न समझना चाहिए कि राज्य ने समाज को कोई लाभ ही नहीं पहुँचाया है। प्रत्येक समाज में नियम निर्माण तथा अपराध निर्माण की शक्ति शासन पद्धति के भिन्न भिन्न अंगों से मिली हुई होती है और यदि ऐसा न हो तो समाज के अन्दर अराजकता फैल जावे।

राज्य का अराजकता को रोके रखना समाज के लिए कोई छोटा लाभ नहीं हैं, यह अवश्यमेव शोकजनक घटना है कि प्रायः राज्य अपनी शक्ति का अनुचित उपयोग भी करना प्रारम्भ कर देते हैं। जहांपर उन्हें हांथ न देना चाहिए वहां पर भी हांथ देना प्रारम्भ कर देते हैं । इस प्रकार राज्य के द्वारा समाज के कार्यों में अनुचित हस्ताक्षेप के कारण समाज के अन्दर दो दूषण उत्पन्न होजाते हैं। एक तो छल कपट का बढ़ जाना, दूसरा झूठी साक्षी देना तथा शपथ खाना। यदि राज्य वैय्यक्तिक सम्मतियों में तथा कर्यों में अपना हस्ताक्षेप करे तथा जो व्यक्ति राज्य की सम्मति के अनुसार न चले उसे दण्ड देना प्रारम्भ करे इस दशा में लोग दिल में कुछ

दबेगें तथा दण्ड के भय से करगे कुछ। परिणाम इसका यह होगा कि लोगों के अन्दर छल कपट की मात्रा बे अन्त सीमा तक बढ़ जावेगी। और ऐसा प्रायः होता भी रहा है जहां भी राज्य ने इस प्रकार अपनी. शक्ति का अनुचित उपयोग किया हो। यूरोप में कुछ सदियों पूर्व राज्यों ने व्यक्तियों के धर्मों की रक्षा करने को भी अपना ही कार्य समझ लिया था। परिणाम उसके कारण जो मानवघात हुआ वह किसी से छिपा नहीं है। और उस मानवघात के कारण जनता में जो छल कपट की जो आदतें पड़गयी थीं उसका उल्लेख हम पूर्व भी कर ही चुके हैं। छल के साथ ही झूठी शपथ खाने का बड़ा भारी संबन्ध है। इङ्गलैण्ड में जिस समय राज्य ने प्रोटेस्टैन्ट धर्मावलम्बियों को ही राज्याधिकारी होने का नियम पास किया उस समय उसने प्रत्येक व्यक्ति से शपथ लेने का कार्य प्रारम्भ किया। जो व्यक्ति प्रोटेस्टैन्ट होने की शपथ देवे उसे राज्याधिकारी बनाया जाताथा अन्यों को नहीं। परिणाम इसका यह हुआ कि जनता में झूठे शपथ खाने का अभ्यास पड़गया। विचित्रता तो यह है कि आंग्ल जनता के लिए आजकल शपथ खाना भी एक रीति रिवाज़ सा बन गया है। यह क्यों ? यह इसी लिए कि वहां प्रत्येक प्रकार के कार्य के आरम्भ में धर्म सम्बन्धि शपथ बालकों तक से ली जाती थी। बालकों को इन बातों का पहिले पहल क्या ज्ञान होता है। वे बिचारे शपथ भी उसी प्रकार खा लिया करते हैं जैसे कि प्राचीन काल से चले आये हुए अन्य रीति रिवाज सम्बन्धी कार्यों को करदिया करते हैं। सारांश यह है कि जो बात इङ्गलैण्ड

के राज्य ने किसी उद्देश्य से आरम्भ की थी वह अब रीति रिवाज के रूप में परिवर्त्तित हो गयी तथा अब उसका उस उद्देश्य के साथ कुछ भी विशेष आवश्यक सम्बन्ध न रहा। इस प्रकार यह हमने दिखा दिया कि राज्यों ने जो व्यवसाय की रक्षा के लिये नियम बनाये उलटा उससे व्यवसायों को नुक़सान ही पहुंचा। जो धर्म की रक्षा के लिए यत्न किये उससे जनता में छल कपट बढ़ा और जो **सत्यता** को सुरक्षित करने के लिए कार्य प्रारम्भ किये उससे जनता में **झूठे शपथ** खाने का स्वभाव पड़ गया। इसी प्रकार भिन्न भिन्न यूरोपियन राज्यों ने ब्याज को कम करने के लिए कठोर कठोर नियम बनाये परन्तु हुआ क्या ? ब्याज पूर्व की अपेक्षा भी अधिक हो गया। क्योंकि रुपये का उधार लेना या न लेना व्यक्तियों की अपनी २ परिस्थिति पर निर्भर किया करता है। राज्य के कठोर नियमों का यह भी प्रभाव हो सकता है कि राज्य द्वारा निश्चित ब्याज पर कोई उत्तमर्ण अधमर्ण को रुपया देने पर न सन्नद्ध हो परन्तु यदि अधमर्ण को रुपये की अत्यन्त ही अधिक आवश्यकता हो तो उस दशा में वह क्या करेगा सिवाय इसके कि चुपके चुपके उत्तमर्ण को मूहमांगा ब्याज दे कर रुपया उधार ले लेवे। इस पर विशेष मैं अपने संपत्तिशास्त्र में ही लिखूंगा आशा है कि पाठक वहीं पर देख लेंगे।

ब्याज सम्बन्धी राज्य नियम

पाश्चात्य देशों में कुछ एक शताब्दी पूर्व राज्यों ने धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों में प्रेस (Press) छापा खाना

की स्वतंत्रता को नष्ट किया हुआ था परन्तु प्रेस की स्वतंत्रता ही इस बात की सूचक है कि कहां तक राज्य का यह कार्य अनुचित था। आश्चर्य तो इस बात पर आता है कि भारत में आंग्ल जैसे सभ्य राज्य ने सदियों के अनुभव को भुला कर प्रेस को परतन्त्र किया हुआ है। जनता में विद्या विज्ञान की वृद्धि को रोक दिया है। जो कुछ भी हो, यह आज प्रसन्नता की बात है कि सभ्य संसार ने इस सच्चाई को समझ लिया है कि जनता कि समृद्धि का मुख्य कारण यह है कि राज्य के पास जहां तक हो सके अत्यन्त अल्प-शक्ति हो वे और राज्य अपना सिर कभी भी इतना न ऊपर उठाने पावे कि जनता के स्वार्थों के निर्णय करने में अपना हाथ देने लगे तथा जनता की इच्छा तथा स्वतंत्रता का घात करना प्रारंभ कर देवे।

पञ्चम परिच्छेद

इतिहास का उदय

तथा

मध्य काल में ऐतिहासिक साहित्य की दशा

पिछले परिच्छेदों में पाठकों के सामने यह रक्खा जा चुका है कि धर्म, साहित्य तथा राज्य सभ्यता की उत्पत्ति में कारण नहीं है अपितु सभ्यता द्वारा स्वयं उत्पन्न होते हैं प्राकृतिक तत्वों का सभ्यता की उत्पत्ति पर जो प्राभव है वह भी पीछे सविस्तर तौर पर दिखा ही जाचुका है। इस परिच्छेद में इस बात के दिखाने का यत्न किया जावेगा कि इतिहास का उदय किस प्रकार हुआ है। यह क्यों ? । यह इसी लिए कि समाज के इतिहास का समाज की वास्तविक दशा के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है। समाज की दशा से जहां उसके इतिहास का अनुमान किया जा सकता है वहां इतिहास से समाज की दशा को पता लगाया जा सकता है।

अत्यन्त प्रचीन काल में मनुष्य, जब कि उन्हे अक्षरों का ज्ञान भी न था, कविताओं द्वारा अपना खाली समय काटा करते थे। संसार की असभ्य से असभ्य किसी जाति को लेलो किसी न किसी प्रकार की कविता उन में अवस्य मिलेगी विचित्रता तो यह है कि इन कविताओं को स्वरक्षित रखने

के लिए उस असभ्य समाज में कुछ मनुष्यों की एक श्रेणी बन जाती है जो कि प्राचीन काल से चली आयी हुई कविताओं को स्मरण रखती हैं तथा नयी कविताओं को बनाती हैं तथा एकत्रित करती रहती हैं। दृष्टान्त के तौर पर कुछ एक देशों के नाम हम यहां पर दे देते हैं जिनमें कि उपरि वर्णित कविताओं तथा उनके स्वरक्षित रखने वाली श्रेणियों की विद्यमानता है। उन देशों के नाम निम्न लिखित हैं :—

(१) चीन (२) तिब्बत (३) तार्तार प्रदेश (४) भारतवर्ष (५) बलोचिस्तान (६) पश्चिमएशिया (७) कालेसागर के मध्य वर्ती द्वीप (८) मिश्र (९) पश्चिम अफ्रीका (१०) उत्तरीय अमेरिका (११) दक्षिणीय अमेरिका (१२) शान्तमहासागर के द्वीप।

इन सब देशों में अक्षर विज्ञान के बहुत ही पूर्व कविताओं का ही प्रयोग था। उसी में उनका इतिहास तथा ज्ञान विद्यमान था। इन कविताओं को प्राचीन काल में बेअन्त मान्य की दृष्टि से देखा जाता था। पिता अपना कर्त्तव्य समझता था कि वह उन कविताओं को अपने पुत्रों को याद करवा देवे जिससे उनके पूर्वजों का ज्ञान तथा इतिहास नष्ट न होने पावे। उन दिनों में पिता पितामहों के समय से चली आयी कविताओं को जिस पूज्य दृष्टि से देखा जाता था उसका वर्णन करना बहुत ही कठिन है। और यह ठीक भी मालूम ही पड़त जब कि पूर्वजों के इतिहास तथा ज्ञान का ये कविताएं ही एक मात्र भण्डार हो वें। उन कविताओं के पढ़ने से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में हम लोगों के पूर्वज किस असभ्य अवस्था में विद्यमान थे।

परन्तु यहां पर एक बात न भुलानी चाहिए वह यह कि भिन्न २ देशों की इन कविताओं में उनकी जल वायु तथा परिस्थिति के कारण बड़ा भारी अन्तर पड़ गया है। कविताओं को स्वरक्षिति रखने वाली श्रेणी को असभ्य समाजों में बड़ी पूज्य दृष्टि से देखा जाता है तथा उन असभ्यों को यह विश्वास होता है कि अमुक श्रेणी को ईश्वर ज्ञान दिया करता है तथा उनकी समरण की हुई कविताएं ईश्वरीय ज्ञान हैं। इतिहास का आरम्भिक रूप यदि कहीं देखना हो तो इन प्राचीन कविताओं को देखो। समय के गुजर ने पर तथा सभ्यता के आरंभ हो जाने पर जब जातियों को अक्षरों का ज्ञान हुआ तब उनके स्वभाओं में भी बड़ा भारी अन्तर आ-गया। **अक्षर विज्ञान** के कारण प्राचीन असभ्य जातियों में जो आक्रान्ति तथा परिवर्त्तन आगये उन्हें इस प्रकार दिखा-या जा सकता है।

(१) अक्षर विज्ञान से असभ्य जातियों का **ज्ञान** स्थिर हो गया। इससे उनमें समय के साथ "स्मरण शक्ति" की ओर प्रकृति कम होती चली गयी और ब्राह्मणों तथा पुरोहितों के प्रति अनुचित मान्य भी घटता चला गया। प्राचीन रीति रिवाजों पर जहां उनमें तर्क करना आरम्भ हुआ वहां अपने देश के इतिहास को भी उन्होंने लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार **अक्षर विज्ञान** के निकल आने पर असभ्य समाजों में दो बड़े भारी परिवर्त्तन हुए।

(क) रीति रिवाज़ों की ओर उतना मान्य न रहा जितना कि पहिले था।

• (ख) कविताओं को याद करने वाली तथा सुरक्षित रखने वाली श्रेणी का महत्व उतना न रहा जितना कि पहिले समझा जाता था।

अक्षर विज्ञान ने जो परिवर्त्तन किये उनका यहीं पर अन्त नहीं हो जाता है अक्षर विज्ञान के होते ही असभ्य जातियों में तर्क की शक्ति बढ़ने लगती है तथा उनका प्राचीनों पर वह विश्वास नहीं रहता है जो कि पहिले था। यूनान में पहिले पहिल उन डाकुओं को हरकुलीज (Hercules) का नाम दिया जाता था जो कि अपने कार्यों में सफलता को प्राप्त कर लेते थे तथा जनता में यह आम विश्वास था कि ऐसे व्यक्ति मर कर के देवता बन जाते हैं। इस विश्वास का प्रारम्भ कैसे हुआ यह तो बताना बहुत ही कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है आदि आदि में ऐसी घटनाएं आम थी अक्षर विज्ञान के पता लगाने पर जिस समय संपूर्ण देश की प्रचलित गाथाओं को एकत्रित किया उस समय एक ही नाम के व्यक्तियों के साथ अनेक घटनाओं को जुड़ा हुआ संग्रहकर्त्ताओं ने पाया। इन संग्रहों का नाम ही पुराण या माइथालोजी (Mythology) है। प्राचीन काल की बात तो जाने दीजिये, मध्य कालतक इस प्रकार की घटनाएं विद्यमान थी। इङ्गलैंड में रिचर्ड प्रथम को उसकी वीरता के कारण "सिंह" की उपाधि दी गयी थी। विचित्रता यह है। कि आंग्ल जनता में उन दिनों में यह विश्वास फैलगाया कि रिचर्ड को सिंह इसलिए कहा जाता है कि उसने अकेले ही एक वार सिंह को मारा था। इसके ऊपर बहुत सी गाथाएं गढ़ी गयीं जो कि अभीतक आंग्ल साहित्य में

विद्य मान हैं।

ईसाई धर्म जब असभ्य मूर्त्ति पूजकों में फैला उस समय उन मूर्त्ति पूजकों की बहुत सी गाथाओं को असभ्य समझ कर छोड़ देने के स्थान पर ईसाई सन्तों महन्तों के साथ जोड़ दिया गया। (।) यूरोप के अतिरिक्त अन्य देशों के इतिहास भी इसी बात की सच्चाई को प्रकट करते हैं। भारत वर्ष में ब्राह्मणों को प्राचीन काल में जो प्रधानता थी उसके भी वेही कारण थे जो कि पीछे लिखे जाचुके हैं। संसार में भारत वर्ष ही एक ऐसादेश है जिसमें अत्यन्त प्राचीन काल की पुस्तकें सुरक्षित तौर पर रखी हुई हैं। चीन भीको के धर्म को २००० दोहजार वर्षों से अधिक समय से अवलम्बन करता चला आरहा है। फारस की 'जिन्दवस्था' नामी प्राचीन पुस्तक अब तक मिलती है। उसके द्वारा फारस की प्राचीन दशा को अच्छी तरह से जाना जा सकता है। जावा ने तो मुसलमानी धर्म को क्या ग्रहण किया अपने प्राचीन इतिहास को ही सदा के लिये खो दिया। हिन्दु स्नान सागर के द्वीपों में जावा ही एक ऐसा था जिसने बड़ी भारी उन्नति की थी परन्तु इस समय उस देश के प्राचीन राजाओं की सूची तक नहीं मिलती है। क्योंकि जावा वालों ने अपने सबके सब प्राचीन राजाओं को मुसलमानी सन्तों महन्तों का नाम देकर इस तरह से गड़ बड़ मचादी है कि उनके प्राचीन इतिहास का

[१] लेखक की 'ईसाई मत का रहस्य' नामी पुस्तक देखो।

पता लगाना ही कठिन होगया है। मध्य कालीन इतिहास में इसी प्रकार के अनेकों कारणों से सत्यता का ढूंढना कठिन होगया है। रोमन साम्राज्य के भंग होने पर भिन्न २ यूरोपियन जातियों के इतिहास के लिखने का काम ईसाई पादरियों के हाथ में चला गया। इन्होंने जो उस काल के इतिहास में किस्से कहानियां घुसेड़ी वह किसी से छिपी नहीं है। ईसाइयों ने अपने हाथ से लिखे हुए इतिहासों में धर्म को विशेष तौरपर प्रधानता दी। इससे समाज को जो कुछ मिला वह यही कि उनमें भ्रमात्मक विश्वास बेअन्त सीमातक बढ़ गया। यूरोप के मध्य काल का संपूर्ण इतिहास ईसाइयों की गपोड़ों से भरा पड़ा है। इससे समाज की उन्नति के स्थान पर अवनति ही हुई। हमें तो इसी पर आश्चर्य होता है कि यूरोप इन भ्रम जालों को काट कर किस प्रकार स्वतन्त्र हो गया। यूरोप में मध्य काल में इतिहास की जो बुरी गति की गयी उसके तीन मुख्य कारण कहे जा सकते हैं।

(१) यूरोप की जातियों को अक्षर विज्ञान के पता लगने से उनके भ्रमात्मक विश्वास लेख बद्ध हो गये।

(२) धार्मिक परिवर्त्तन

(३) इतिहास का लिखना पादरियों के हाथ में चला जाना।

इन तीन कारणों के प्रभाव से यूरोप का इतिहास इस सीमातक बिगड़ गया जिसका वर्णन करना कठिन है। ऐतिहासिक लोग इतिहास को रुचि कर बनाने के उद्देश्य से उसमें किस्से कहानियों को डाल देते थे। कई सदियों तक पाश्चात्यों के अन्दर यह विश्वास काम करता रहा कि उन

लोगों के पूर्वज ट्राय के युद्ध के अन्दर विद्यमान थे *। फ्रैंक्स जाति ने अपने आपको जहां हक्टर के पुत्र फ्रन्कस (Froncus) की सन्तान समझना प्रारम्भ किया वहां ईनस (Aneas) के पुत्र ब्रूटस (Brutus) से ब्रिटन वालों ने अपने आपको उत्पन्न हुआ मानना प्रारम्भ किया। सारांश यह है कि जिस प्रकार भारतवर्ष में राजपूत लोग अपना सम्बन्ध सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश से जोड़ने में फख़र करते थे उसी प्रकार यूरोप में सब की सब जातियां ट्राय के योद्धाओं के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने में अभिमान करती थी। मध्य काल के ऐतिहासिकों के ग्रन्थों को देख कर अत्यन्त खेद उत्पन्न होता है। वे लोग जब कभी किसी देश के इतिहास को लिखना प्रारम्भ करते हैं उसका आरम्भ ट्राय के युद्ध से करते हैं। उनका कथन है कि प्रायम के पुत्र ने पेरिस बसाया तथा नीटों के नाम पर नूरम्बर्ग (Nuremberg) का नगर बना एक वार एक नदी में हूणजाति का एक राजा डूब कर मर गया था तब से उस नदी का नाम हम्बर पड़ गया। भारतवर्ष में भी प्रत्येक नगर के साथ इसी प्रकार की प्राचीन घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ा हुआ है। भारतवर्ष में कोई ऐसा तीर्थ नहीं होगा जिसके साथ किसी न किसी देवता का सम्बन्ध न जुड़ा हुआ हो।

यूरोप के १४वीं सदी के ऐतिहासिकों पर यदि हम दृष्टि डालना प्रारम्भ करें तो हमें मालूम पड़ेगा कि फ्रायसार्ट (Froissart) के अनन्तर सब से प्रसिद्ध ऐतिहासिक मैथ्यू ही

* (देखो लेखक का ग्रीस का इतिहास)

था। इसने जो भिन्न २ गपोड़ों का इतिहास निकाला है उसको पढ़ने से पता लग सकता है कि उस समय यूरोप किस प्रकार महान् अन्धकार में लीन था। परन्तु सब दिन एक जैसे नहीं गुजरते समय आया इतिहास के विषय में भी उन्नति होनी प्रारम्भ हो गयी। उन्नति के साथ साथ पुराने भ्रमात्मक विश्वास भी इतिहास की पुस्तकों में कम होने लगे। मध्य कालीन इतिहास लेखकों में मैचिवली (Machiavelli) तथा बोदिन (Bodin) का नाम अति प्रसिद्ध है। ये दोनों ही ऐतिहासिक सामाजिक घटना चक्र को पूर्ण तौर पर न समझ सके। इनके अनन्तर कामिनस (Comines) नामी ऐतिहासिक का उदय होता है। परन्तु यह जहां उपरि लिखित दोनों ही ऐतिहासिकों की अपेक्षा योग्यता में न्यून था वहां तत्कालीन धर्म का भी इस पर प्रभाव पर्याप्त था। युद्ध के विषय में एक स्थान पर यह लिखता है कि "युद्ध एक बड़ा भारी रहस्य है। परमात्मा ने अपनी इच्छाओं के पूर्ण करने के लिए युद्ध को एक साधन बनाया हुआ है। परमात्मा कभी एक पक्ष को जिताया करता है तो कभी दूसरे पक्ष को। इस प्रकार यह सिद्ध है कि राष्ट्रीय विक्षोभों का एक मात्र कारण परमात्मा ही है। यह विक्षोभ कभी भी न उत्पन्न होवें यदि राजा महाराजा लोग समृद्ध होकर परमात्मा को न भुला दिया करें।" इस प्रकार की सम्मतियों पर आश्चर्य करना वृथा है। क्योंकि समय का ऐसा ही प्रभाव हुआ करता है। परन्तु यहां पर यह न भूलना चाहिए कि कामिनस के काल में ही इतिहास के लेखन में उन्नति प्रारम्भ हो गयी थी। इसमें सन्देह नहीं

हैं कि यूरोप में सुधार की लहर (Reformation) ने भी इस विषय को बड़ी भारी सहायता पहुँचायी है। १८वीं सदी से ही इतिहास के लेखन में विशेष परिवर्त्तन हो जाते हैं। १८वीं सदी से पूर्व पूर्वतक इतिहास में बहुत सी अनावश्यक बातों का प्रवेश था। १६वीं सदी के आरम्भ में पाश्चात्य की क्या दशा थी यह निम्न लिखित दो दृष्टान्तों से स्पष्ट हो जावेगा।

(१) सोलहवीं सदी के आरम्भ में प्रसिद्ध ज्योतिषी स्टाफर (Stoffier) टूबिन्जन नामी स्थान में गणित का प्रोफेसर था। इसने ज्योतिष में बड़े बड़े आविष्कार किये थे। परन्तु समय का सिक्का इसपर भी पूर्ण तौर पर था। १५२४ में उसने फलित ज्योतिष द्वारा हिसाब लगाकर लोगों को यह प्रकट किया कि अमुक बजे के अमुक दिन संसार पर पुनः भयानक जलप्रवाह * आवेगा। जिससे सारा का सारा संसार डूबजावेगा। इस प्रसिद्ध व्यक्ति का कथन संपूर्ण यूरोप में पानी पर तेल बिन्दू के सदृश फैलगया था। सारे

* संसार के सभी देशों के इतिहास में 'एक भयानक' जलप्रवाह का वर्णन मिलता है जिसके द्वारा सारे संसार पर पानी ही पानी होगया था और सब के सब मनुष्य मरगये थे। केवल गिन्ती के ही मनुष्य न मरे थे। इस जलप्रवाह का भिन्न देशों की प्रचीन पुस्तकों में किस प्रकार वर्णन किया हुआ है इसके लिये देखो (प्रो० रामदेवः—भारत वर्ष का इतिहास द्वितीयावृति पृष्ठ० १८० से १८८ पर्य्यन्त) अथवा (देखो Bible Myths and its parallels in other Preligious by Done).

यूरोप में मारे भय के घबड़ाहट फैलगयी। समुद्र तट वासियों ने अपने २ मकान छोड़दिये तथा देश के अन्दर किसी ऊंचे प्रदेश पर जा बसे। सम्राट चार्लस पञ्चम ने बहुत से निरीक्षक नियत किये जो कि यूरोप में सब से अधिक सुरक्षित स्थान का पता लगावें। इस प्रकार के आत्मरक्षण के कार्य प्रत्येक व्यक्ति जब करही रहा था कि जल प्रवाह का दिन निकट पर निकट आने लगा। परन्तु कोई भी उचित उपाय किसी के द्वारा न हो सका।" ईश्वर की कृपा से कोई भी जलप्रवाह न आया। स्टाफर की बात सर्वथा झूठ सिद्ध हो गयी।

(२) उपरि लिखित भयानक भविष्यवाणी के सत्रह वर्षबाद यूरोप में किम्बदन्ती उड़ी कि सैलीसिया में एक बालक के स्वर्ण के दांत निकले हैं। पाश्चात्य लोगों ने इसको अशगुन का चिन्ह समझा तथा घबड़ाने लगे। अन्त में डाक्टर हार्स्ट (Dr. Horst) ने पाश्चात्य जनता को यह कह कर शान्त किया कि 'स्वर्ण के दांत' तो इस बात के सूचक हैं "अब योरोप में स्वर्णयुग (सत्ययुग) आनेवाला है तथा सम्राट् तुर्कों से यूरोप को खाली करदेगा"। इत्यादि।

आंगलो की विद्या विज्ञान तथा विचार की उन्नति का इतिहास

सोलवीं सदी के मध्य से १८ वीं सदी के अन्त तक

इस युग के मनुष्यों को प्राचीन काल की बहुत सी बातों का ध्यान तक नहीं आ सकता है। आज कल जनता में विद्या विचार की इस सीमा तक उन्नति हो गयी है कि बालकावस्था से ही प्रायः मनुष्यों को उन सत्याताओं का ज्ञान हो जाता है जिसके लिए कि ३०० वर्ष पूर्व इङ्गलैण्ड में असीम प्रयास उठाने पर भी मनुष्य विश्वास नहीं करते थे। उन दिनों में था क्या लोग भूतों प्रेतों पर विश्वास करते थे। जादूगरनियों तथा टोने करने वालों को बहुत मानते थे। सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण उन के लिए एक धर्म का अंग सा था। जो कोई उनके पूर्वजों के विचारों को असत्य ठहराये वह नास्तिक समझा जाता था। सन्त महन्तों की गपोड़पने पर उन्हें अटल विश्वास था। वेही उनके विद्या विचार के एक प्रकार से शिक्षक थे। इस अन्धकार से यदि साधारण अशिक्षित जनता ही अन्धी हुई होती तब भी कोई बात थी। अच्छे पढ़े लिखों का भी इससे उन दिनों छुटकारा न था। जो कोई महा पुरुष समय समय में जनता की मूर्खताओं पर सन्देह प्रकट करने का यत्न करता था उसे हंसा जाता था। लोग उसके विषय में यह कहकर हंसा करते थे कि इसे तो अक्षर ही अक्षर आते हैं। कभी यह विचारा दुनियां को क्या जाने। १६ वीं सदी के आरम्भ में तो यह दशा थी कि विद्या

विचार की उन्नति के इच्छुक महा पुरुषों को अपनी जान तक को बचाना कठिन पड़ जाता था। किसी जाति के विद्या विचार की उन्नति में शंकावाद का बड़ा भारी भाग है। विना शंका तथा सन्देह के उन्नति कहां? जब तक मनुष्य अपने में आप ही सन्तुष्ट रहे तब तक वह किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं कर सकता है। सन्देह ही मनुष्य को अन्वेषण करने के लिए प्रवृत्त करता है। अन्वेषण द्वारा प्राप्त लाभों के विस्तार पर ही एक मात्र सभ्यता की उन्नति का आधार समझना चाहिए। सन्देह तथा अन्वेषण दोनों में ही आज से कुछ सदियां पूर्व महा पुरुषों को अनन्त कष्ट उठाने पड़े हैं। परन्तु सच्चाई की ही अन्त में विजय हुआ करती है। चिरकाल से अन्धकार में निमग्न जनता की आंखो का नवीन प्रकाश से आदि आदि में चकमका जाना कुछ भी आश्चर्यप्रद नहीं प्रतीत होना है। ऐसा हुआ ही करता है और ऐसा होता भी रहेगा। परन्तु इस में सन्देह नहीं है कि उन्नति का आधार बहुत कुछ जातियों के शंकावाद पर ही है। इस शंकावाद के कारण हो जातियों ने बड़ी भारी त्रुटियों को तीन स्थानों में से निकाल डाला। धर्म में असहिष्णुता (Intolaration) को विज्ञान में से मूर्खता तथा भ्रमात्मक विश्वासों को तथा राज नीति में से अति सन्तोष को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया। जो कुछ इसके परिणाम हुए यदि उन्हें जानना होवे तो एक वार दृष्टि उठाकर मनुष्य अपने समय को देख लेवे जिसमें कि बेतारबर्की से जहां लोगों के सन्देसे जाते हैं वहां आकाश में वायुयान द्वारा मनुष्य सैर किया करते हैं और सबमेरिन

द्वारा समुद्र के अन्दर ही अन्दर एक देश से दूसरे देश में पहुंच जाते हैं।

उपरि लिखित कथन की सच्चाई को अब हम इङ्गलैण्ड के इतिहास के दिखाने का यत्न करेंगे। इङ्गलैण्ड में एलिजा-बेथ जिस समय राज सिंहासन पर आयी उस समय इङ्ग-लैण्ड दो धार्मिक दलों में विभक्त था। (१) प्रॉटेस्टैन्ट और (२) कैथोलिक्स। एलिजाबेथ ने दोनों ही दलों को एक दूसरे पर आक्रमण करने से बड़े चातुर्य्य से रोकने का यत्न किया। परन्तु कुछ वर्षों के बाद एलिजाबेथ को कुछ एक कारणों से अपनी 'नीति' का परिवर्त्तन करना पड़ गया जिन का कि वर्णन हम आगे चलकर स्वयं ही करेंगे। परन्तु जो कुछ हमें यहां पर दिखाना है वह यही है कि यूरोप में यह एक पहला समय समझना चाहिए जब कि किसी राज्य ने धार्मिक सहिष्णुता की ओर अपना ध्यान दिया। एलिजाबेथ के काल में जो एक विचित्र बात ध्यान देने योग्य है वह यह है कि एलिजाबेथ ने प्रॉटेस्टैन्ट मत वादियों को कैथो-लिक्स के प्रति घृणा तथा क्रोध उतारने को न रोका परन्तु उसका रूप अवश्य मेव बदल दिया। राज्ञी से पूर्व हैन्री अष्टम तथा राज्ञी मेरी के काल में धर्म के ही कारण स्पष्ट तौर पर बतला कर लोगों को कठोर दण्ड दिये जाते थे। परन्तु एलिजा-बेथ की बुद्धिमत्ता से इसमें एक बड़ा भारी परिवर्त्तन आ गया। जो बात आदि आदि में स्पष्ट तौर पर की जाती थी वही बात राज्ञी के काल में छल से की जाने लगी। राज्ञी के राज्य काल में राज्य ने बहुत से मनुष्यों का घात किया और घात का यद्यपि मुख्य कारण धर्म भेद के साथ ही सम्बद्ध

था परन्तु राज्य ने यह कभी भी प्रकट नहीं किया। कैथोलिक्स दल वालों को राज्य की ओर से कहा जाता था कि हम तुम्हें इस लिए कठोर दण्ड नहीं देते हैं कि तुम कैथोलिक्स धर्म के हो अपितु तुम अपने धर्म में से अमुक अमुक बातों को निकाल दो जो कि राज्य के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं विचित्रता जो कुछ थी वह यह थी कि कैथोलिक्स उन बातों को कैसे छोड़ देते जब कि उनके धर्म की अङ्गभूत वे ही बातें होवें।

एलिजाबेथ के काल में धार्मिक साहित्य को देखने से ही मालूम पड़ने लग जाता है कि उस समय धर्म सम्बन्धी क्या क्या परिवर्त्तन हो रहे थे। महाशय हुक्कर की 'धार्मिक नीति, (Ecclesiasticaly Polity) नामी पुस्तक तथा महाशय ज्युवेल की (Apology for the church of England) "आंग्ल चर्च के लिए क्षमा नामी पुस्तक (जो कि हुक्कर की धार्मिक नीति ३० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी) का पारस्परिक मुकाबला करो तो बहुत सा रहस्य प्रकट हो सकता है। ज्युवेल जितना ईसाई सन्तों तथा प्राचीन प्रचारकों के (Fathers) के वाक्यों को अन्तिम प्रमाण समझता था हुक्कर उसके मुकाबले में बहुत ही कम। ज्युवेल जहां अन्ध विश्वास प्रधान था वहां हुक्कर तर्क प्रधान। ज्युवेल ने जहां अपना बहुत समय प्राचीनों की सम्मतियों को संग्रह करने में लगाया वहां हुक्कर ने ऐसा न किया। यदि सम्पूर्ण बात को एक ही शब्द में कहना हो तो यह कहा जा सकता है कि ज्युवेल की पुस्तक में प्राचीन पुरुषों के कथनों के पीछे पीछे तर्क किया गया है परन्तु हुक्कर की पुस्तक में तर्क के पीछे

कथनों तथा प्रमाणों को लिखा गया है।

इस प्रकार पाठकों पर यह स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार एलिजाबेथ के काल में तर्क की प्रधानता आरम्भ हो गयी थी यदि इसी विषय के अन्वेषण को हम आगे और बढ़ायें तो हमें पता लगेगा कि इङ्गलैंड किस प्रकार से अन्ध विश्वासों से निकल कर एक विचार तथा तर्क प्रधान युग में प्रवेश कर रहा था। १६३७ में मुद्रित, महाशय चिलिङ्ग वर्थ (Chilling worth) की "प्रोटेस्टैन्ट धर्म" (Religion of protestants) नामी पुस्तक इङ्गलैंड के धार्मिक इतिहास में अति प्रसिद्ध है यह पुस्तक सुधारकों के कार्यों को उचित ठहराने के लिए लिखी गयी थी। इस पुस्तक को देखने से यह मालूम पड़ सकता है कि किसी प्रकार उस समय तक अन्ध विश्वास लोगों के अन्दर काम कर रहे थे। महाशय हुकर ने जहां तर्क को प्रधानता दी थी वहां ईसाई सन्तों महन्तों के कथनों को भी गौण न बनाया था हुकर ने यह सम्मति दी थी कि समितियों (Councils, के कथनों के सामने व्यक्ति को अपना सम्मति गौण कर देनी चाहिए। परन्तु चिलिङ्गवर्थ को इन बातों में से किसी भी बात की परवाह न था। उस इस बात से कुछ भी मतलब न था कि उसके पूर्वज ईसाई सन्त महन्त या उनको समितियां क्या कहती हैं क्या नहीं कहती हैं। उसकी जो कुछ सम्मति थी उसको वह युक्ति तथा तर्क से ही पुष्ट करना चाहता था। उसे यह स्वीकृत न था कि वह तर्क प्रमाण के ऊपर शब्द प्रमाण को मुख्यता देवे। चिलीङ्गवर्थ ने एक स्थान पर लिखा है कि "तर्क हमें ज्ञान देता है, धर्म हमें विश्वास देता है। ज्ञान के

ही पीछे विश्वास होना चाहिए न कि विश्वास के पीछे ज्ञान। इस लिए तर्क की अपेक्षा धर्म गौण है।" ज्युवेल, हुकर, तथा चिलीङ्ग वर्थ के काल तक इङ्गलैण्ड में धार्मिक विश्वासों तथा युक्तियों में क्या २ परिवर्त्तन न हुए, यदि इसे स्पष्ट तौर पर देखना हो तो यों भी देखा जा सकता है।

ज्युवेल Jewil	हुकर Hooker	चिलिङ्ग वर्थ Chilling worth
(१) बाइबिल को मुख्य प्रमाण तथा अन्तिम प्रमाण मानता था। (२) बाइबिल के अनन्तर प्राचीन पादरियों तथा उनकी समितियों के वाक्यों को प्रमाण मानता था। (३) तर्क को उपरिलिखित दोनों की अपेक्षा गौण।	(१) तर्क तथा प्रचीन पुस्तकें दोनों को ही प्रमाण मानता था। परन्तु अपने कथनों का आधार जहां इसने तर्क को बनाया है वहां उन की पुष्टी प्राचीन पुस्तकों के प्रमाणों से की।	एक मात्र तर्क को ही इस ने अपने कथनों का निरणायक बनाया।

ज्यों ज्यों समय गुजरता गया इङ्गलैंड में तर्क की प्रधानता बढ़ती ही गयी। आजकल तो वहां की दशा ही विचित्र है। धार्मिक विचारों में आंग्ल जनता को अब रूचि ही नहीं रही है कुछ सदी पूर्व जिन विचारों पर सम्पूर्ण यूरोपि-

यन राज्यों में कंप कंपी उठा करती थी आजकल उन विवादों को सुनने तक लोग नहीं जाते हैं। लोगों की धार्मिक बातों की इस अरुचि तथा उदासीनता के दो मुख्य कारण कहे जा सकते हैं।

(१) आजकल समाजों की दशा विचित्र हो गयी है। बेअन्त विषय मनुष्यों के सामने आगये हैं जिनका कि अनुशीलन करना आवश्यक हो रहा है। अतः सम्पूर्ण जनता का किसी एक ही विषय पर अपना दिमाग दे देना कठिन हो गया है जब तक कि उसका सम्बन्ध सभी के साथ बड़ा घनिष्ट न हो।

(२) विज्ञान में बहुत से अभी ऐसे विचित्र विचित्र अन्वेषण करने पड़े हैं जिनके लिए बड़े बड़े योग्य पुरुष अपना दिन रात का समय दे रहे हैं। इस दशा में उन योग्य पुरुषों के पास इतना समय ही नहीं है कि वह धार्मिक विचारों में भी भाग लेने के लिए उसे दे सकें।

उपरि लिखित दो कारणों के कारण एक सदी से अधिक समय गुजरता गया कि एक भी स्वतन्त्र नवीन पुस्तक अब तक इङ्गलैण्ड में धार्मिक विषयों पर नहीं निकली है जब कि अन्य वैज्ञानिक विषयों पर जो पुस्तकें आजकल निकल रही हैं उनकी गणना तक करनी कठिन है। सारांश यह है कि आ-जकल इङ्गलैण्ड की जनता का झुकाव उस ओर नहीं रहा है जिस ओर पूर्व था। सारी की सारी सतरहवीं सदी में इङ्गलैण्ड में शंकावाद तथा धार्मिक सहिष्णुता की उन्नति हो रही थी। इसमें सन्देह नहीं है कि जहां उन्नति हुआ

करती है वहां उन्नति को रोकने वाले विघ्न भी पर्याप्त होते हैं। एलिजाबेथ की विचारयुक्त धार्मिक सहिष्णुता की नीति को आंग्ल राजाओं ने रोकने का यत्न किया परन्तु रोक न सके।

एलिजाबेथ के काल में कैथोलिक्स का प्रोटेस्टैन्ट के साथ ही झगड़ा था परन्तु जेम्ज़ तथा चार्लस के राज्य में इन झगड़ों ने कोई दूसरा ही रूप धारण कर लिया। इन झगड़ों का राज नीत के साथ सम्बन्ध जुड़ गया। परिणाम इस परिवर्तन का यह हुआ कि कैथोलिक्स जहां एक राजा के राज्य फे पक्षपाती हो गये। वहां प्रोटेस्टैन्ट परिमित एक सात्तात्मक राज्य के पक्षपाती बन गये। और इसी पक्ष ने कुछ ही समय के बाद वह रूप धारण किया जिसके कारण कट्टर सुधारकों को (Puritons) राजा का सर्वथा ही राज्य अनभीष्ट हो गया तथा वे प्रजा सात्ता-त्मक राज्य के एक मात्र पक्षपाती हो गये। इन कट्टर सुधा-रकों ने जो इङ्गलैण्ड में काम किये वह इङ्गलैण्ड के इतिहास में स्मरणीय है।

सब से विचित्र काम जो उन्होंने किया वह यह था कि इन्होंने अपने राजा को ही शूली पर चढ़ाया। इन्होंने वैय-क्तिक अधिकारों तथा स्वतन्त्रता को कुचलने वाले राज्यनि-यमों को बनाया तथा देश में प्रचलित किया। इन सब त्रुटियों के करते हुए भी कट्टर सुधारकों ने इङ्गलैण्ड के लिए जो काम किया है वह कभी भी भुलाया नहीं आ सकता है।

उन्होंने इङ्गलैण्ड के अन्दर से बहुत सी बुराइयों को दूर कर इङ्गलैण्ड को एक नये युग में प्रविष्ट कर दिया। सारांश यह है कि उपरि लिखित शंकावाद तथा तर्क प्राधान्य को और लोगों की प्राचीन रीति रिवाजों के प्रति घृणा को इङ्गलैण्ड में पहिले पहिल **बेकन** ने दर्शन शास्त्र में, क्राम्वल ने राजनीति में चिलिङ्गवर्थ, ओवन तथा हेक्रज़ धर्म शास्त्र में, हावज् तथा ग्लैनविल अध्यात्मविद्या में और हैरिङ्गन, सिडनी तथा लाक् (Locke) राष्ट्रीय विचार शास्त्र में प्रवेश कराकर नवीन नवीन शास्त्रों के निर्माण तथा प्रचलन में सफल हुए।

रीतिरिवाजों के जड़ से उखाड़ डालने में इङ्गलैण्ड जो पग बढ़ा रहा था उसमें 'प्राकृतिक विज्ञान' की उन्नति ने उसे बड़ी भारी सहायता दी। जनता में किस प्रकार तर्कवाद तथा शंकावाद की उन्नति हो रही थी यह पूर्व ही विस्तृत तौर पर दिखाया जा चुका है। इसी तर्कवाद तथा शंकावाद की उन्नति ने प्राकृतिक विज्ञान को एक नया रूप दिया। आंग्ल-शिक्षित लोग संदेह प्रकृति के तो हो ही गये थे। उन्होंने प्राकृतिक घटनाओं के ऊपर जनता में प्रचलित हुए हुए कारणों की परीक्षणों द्वारा अलोचना करनी प्रारम्भ की। गृहयुद्ध के समाप्त होने के बाद तथा आंग्लराजा के शूलीपर चढ़ाये जाने से तीन वर्ष पूर्व महाशय **थोमास ब्राउन** ने Sir Thomas Browne) साधारण **गल्तियों का अन्वेषण** (Inquiries in to vulgar & common Errors) नामी प्रसिद्ध

पुस्तक लिखी। इसमें उसने कई एक उन वैज्ञानिक अपूर्व बातों तक को लिखा जिनका कि ज्ञान अब जाकर संसार को आ है। ब्राउन की पुस्तक ने प्रचीन भ्रमात्मक विश्वासों की ऐसी पोल खोली कि उनका जड़ से ही नाश हो गया। इतना होते हुए भी समय का प्रभाव उस पर पर्याप्त था जो कि उस की पुस्तक के पढ़ने से ही पता लग सकता है। इन सब बातों के होते हुए भी महाशय ब्राउन ने इङ्गलैण्ड के लिए बड़ा भारी काम किया है। महाशय ब्राउन का कथन है कि सत्य जानने के दो ही मुख्य स्तम्भ हैं (१)तर्क तथा (२)अनुभव। उस की सम्मति में निम्न लिखित कारणों से भ्रमात्मक ज्ञान उत्पन्न हो जाते हैं।

(१) प्राचीन पुरुषों के कथनों को बहुत ही अधिक प्रमाण मानना।

(२) सत्य के अन्वेषण में प्रमाद करना।

(३) अन्ध विश्वास तथा अन्ध श्रद्धा।

महाशय ब्राउन ने तर्क वाद तथा शंका वाद को जो प्रधानता दी वह अभी दिखायी जा चुकी है बेकन के बाद आङ्गलों की विद्या तथा तर्कणा की उन्नति में बायल (Boile) महाशय का भाग भी भुलाया नहीं जा सकता है। अपने सम कालीन विद्वानों में इसका न्यूटन (Newton) से दूसरा दर्जा है। इसने निम्न लिखित बातों का पता लगाया है।

(१) रंग तथा ;ताप के सम्बन्ध को परिक्षणों द्वारा जानना।

(२) द्रव पदार्थों के स्थिर रखने की विद्या (Hydro-statics) को निकाला।

(३) वायु के संकोच विकास को उसकी घनता के अनुसार बताया।

(४) रसायण शास्त्र के बहुत से आविष्कारों को प्रकट करने का यत्न किया।

बायल ने इन सब आविष्कारों के करने में सफलता प्राप्त करने के मुख्य कारणों पर बल दिया और वे दोनों कारण निम्न लिखित हैं :—

(१) प्रत्येक बात की सच्चाई जानने के लिए स्वतः परीक्षण करो।

(२) प्राचीनों के कथनों को बहुत अधिक प्रमाणता देने का यत्न न करो।

बेकन से लेकर प्रायः आगामी सभी विद्वानों ने विद्या विज्ञान की उन्नति में इन्हीं तीन बातों पर विशेष बल दिया है।

(१) प्रत्येक घटना पर सन्देह उठाओ।

(२) इनका अन्वेषण करो।

(३ अन्वेषण द्वारा उनका पता लगाओ।

महाशय बायल उपरि लिखित सिद्धान्त से इतना अधिक प्रभावित हो चुका था कि उसने अपनी रसायण की पुस्तक का नाम "संदिग्ध रसायण*" रखा जिसका भाव यह था कि जब तक मनुष्य संदिग्ध तथा जिज्ञासु न बनें तब तक वह रसायण आदि विषयों में आविष्कार नहीं कर सकता है। बायल के समय में ही राजा चार्लस द्वितीय "राजकीय सम्मिति" (Royal Society) का निर्माण करता है। राजकीय सम्मिति का उद्देश्य बहुत ही विचित्र था। उसको राजा

की ओर से जो अधिकार पत्र (Charter) मिला उसमें लिखा था कि इस सम्मिति का मुख्य प्रयोजन प्राकृतिक विज्ञान का दैवीय विज्ञान के विरुद्ध विशेषतः प्रचार करना है। पादरियों ने इस सम्मति को जिस घृणा तथा भय की दृष्टि से देखा उसे वर्णन करना कठिन है। सम्मिति के विरुद्ध पादरियों ने जो जो यत्न किये वह आंग्ल इतिहास में स्मरणीय हैं। यहां पर तो इतना ही कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अन्त में पादरियों का प्रयत्न सम्मिति के विरुद्ध निष्फल गया क्योंकि जहां सम्मिति की ओर ही जनता के योग्य योग्य विद्वानों तथा वैज्ञानिकों का संघट्टन था वहां राजा की ओर से उसे अधिकार पत्र मिलने के कारण राजदर्बारी लोग भी इसीको सहायता देने में विशेषतः सम्बद्ध थे। चार्लस द्वितीय के काल में पादरियों ने प्राकृतिक विज्ञान को जड़ से ही उखाड़ डालने का यत्न किया। उन्होंने ऐसे ऐसे यत्न किये जिससे प्राकृतिक विज्ञान की सत्यता पर से जनता की दृष्टि सदा के लिए उठ जावे। यह इसी लिए कि प्राकृतिक विज्ञान की ओर से उन्हें दो तरफ़ से नुक्सान पहुँचा था।

(१) जिन जिन घटनाओं का पादरी लोग कारण बतलाने में असमर्थ थे प्राकृतिक विज्ञान ने उन्ही में अपनी पूर्ण समर्थता प्रकट की। परिणाम इसका यह हुआ कि जनता पादरियों को छोड़कर वैज्ञानिकों की ओर खिंची जा रही थी। इससे पादरियों का जहां महत्व कम हो गया वहां उनकी शक्ति भी बहुत अल्प हो गयी।

(२) प्रकृति विज्ञान के निकल आने से जनता में बहुत से लोग धार्मिक विवादों से अपनी दृष्टि हटाकर प्रकृति विज्ञान में ही परिश्रम करने लग पड़े।

इसमें सन्देह नहीं है कि उपरि लिखित दो कारणों से जनता में से बहुत से व्यक्ति प्रकृति विज्ञान के अनुशीलन के लिए प्रवृत्त हो गये थे और उन विद्वानों के नवीन नवीन आविष्कारों का जनता पर जो प्रभाव पड़ता था वह पादरियों के लिए अत्यन्त भयानक तथा हानिकर था। यह पूर्व भी लिखा ही जा चुका है कि आरम्भ आरम्भ में जातियां जिन प्राकृतिक घटनाओं का विशेष कारण न जानती थी उनका वह दैवी कारण ही बताया करती थी। ज्यों ज्यों प्रकृति विज्ञान ने उन घटनाओं का सन्तोषजनक कारण बताना आरम्भ किया त्यों त्यों दैवी कारणों पर से जनता का विश्वास उठता चला गया। इस अवस्था में यदि हम यह एक ऐतिहासिक सूत्र बना देवें तो अत्युक्ति न होगी कि ज्यों ज्यों प्रकृति विज्ञान का किसी जनता में विस्तार तथा प्रचार होता है त्यों त्यों उस जनता में से भ्रमात्मक विश्वास कम होने लगते हैं। महाशय वक्ल के समय में वायु तथा वृष्टि के नियमों का पूर्ण तौर पर जनता को ज्ञान न हुआ था परिणाम इसका यह था कि जिस वारी वृष्टि का भय हो उसी वारी पादरियों की चर्च में परमात्मा से प्रार्थना होने लगती थी, "हे परमात्मन् आप वृष्टि दीजिये।" परन्तु उन दिनों में चन्द्र ग्रहण तथा सूर्य्य ग्रहण के कारण को जान लिया गया था अतः जनता को उन घटनाओं से कुछ भी भय न रहता था। वह एक

साधारण सी बात जनता के लिए हो गयी थी। वृष्टि का प्रभाव कृषक जनता पर जितना अधिक पड़ता है उतना व्यवसायिक जनता पर नहीं। यही कारण है कि कृषि प्रधान जातियां जितना अधिक भाग्य तथा दैव पर विश्वास करने वाली होती है उतना अधिक व्यवसायिक जातियें नहीं। चार्लस द्वितीय के राज्य काल में आंग्ल जनता जो उन्नति कर रही थी वह स्पष्ट कर दिया जा चुका है। परन्तु एक बात यहां पर न भूलनी चाहिए कि चार्लस द्वितीय का राज्य काल राजा तथा उसके मन्त्रियों की दृष्टि से आंग्ल इतिहास में सब से बुरा काल है। क्योंकि :—

(१) राजा स्वयं कमीना तथा स्वार्थी असदाचारी तथा क्रूर था।

(२) क्लारन्डन (Clarendon) को छोड़ कर उसका एक भी ऐसा मन्त्री नहीं होगा जो कि फ्रान्स की रिश्वत न लेता हो।

(३) जनता पर कर बढ़ गये थे।

(४) आंग्ल राज्य स्वयं भी शत्रुओं से अरक्षित हो गयी थी।

(५) नगरों से बलात् उनके स्वतन्त्रता पत्र छीन लिये गये थे।

(६) नौ सेना तथा स्थल सेना पर पर्याप्त रुपया व्यय करते हुए भी आंग्ल प्रजा की रक्षा उन दोनों सेनाओं ने समय पर न की। इङ्गलैण्ड द्वारा इङ्गलैण्ड को अपमान उठाना पड़ा।

इन सब बुराइयों के होते हुए भी चार्लस द्वितीय के काल में ऐसी घटनाएं बहुत सी हुई जिनके कारण आंग्ल प्रजा की

बेअन्त उन्नति हुई। इसी समय में पहिले पहिल आंग्ल प्रजा का लार्डों के तथा पादरियों के अत्याचार से छुटकारा होता है। क्योंकि राज्य ने एक नियम बना दिया कि पादरी लोग अपने विरुद्ध मत वालों को नहीं जला सकते हैं। यही एक मात्र अधिकार पादरियों से राज्य ने न छीन अपितु उनका कर सम्बन्धी अधिकार भी राज्य ने उनके हाथ से ले लिया तथा उनपर भी अपनी ओर से ही कर नियत करना प्रारम्भ किया। सारांश यह है कि चार्लस द्वितीय के काल में आंगल राज्य में ऐसे ऐसे परिवर्त्तन होते हैं जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक कहे जा सकते हैं कुछ एक परिवर्त्तनों का हम अभी ऊपर दिखा चुके हैं कुछ एक का उल्लेख नीचे किये देते हैं।

(१) लार्ड सभा के हाथ से दिवानी मुकद्दमा सम्बन्धी कुछ एक अधिकार राज्य द्वारा ले लिये गये। जिससे उसका प्रजा पर प्रभाव बहुत कुछ कम हो गया।

(२) प्रजा को अपने प्रतिनिधियों द्वारा ही अपने ऊपर कर नियत करवाने का अधिकार मिला।

(३) धन सम्बन्धी बजट को बनाना प्रतिनिधि सभा (House of Commons) ने एक मात्र अपने ही हाथ में ले लिया। इस विषय में लार्ड सभा का जो कुछ अधिकार था वह केवल स्वीकृति को ही देना।

(४) हेबियस कारपस एक्ट (Habeas Corpus Act.) द्वारा अधिकारियों को बहुत समय तक कैद में न रख कर शीघ्र ही अपराध के निर्णय करने के लिए राज्य को बाधित

किया गया। इससे प्रजा की स्वतन्त्रता की बहुत कुछ रक्षा हो गयी।

(५) फ्राडज् तथा परज्जुरीज (Frauds & perjuries) नियम द्वारा वैयक्तिक सम्पत्तियों के स्वरक्षित करने का यत्न किया गया।

(६) प्रैन्स को राज्य द्वारा बहुत कुछ स्वतन्त्रता देदी गयी। इसके कारण जनता में विद्या विज्ञान के विस्तार में बहुत कुछ सहायता मिली।

इन सब उन्नतियों के साथ साथ जब हम चार्लस द्वितीय के राज्य काल की भयानक घटनाओं को स्मरण करते हैं तब हमें आश्चर्यित होना पड़ता है कि "कहां वह समय और कहां वे उन्नतियां।" चार्लस द्वितीय के समय में ही एक ओर जहां इङ्गलैण्ड में प्लेग हुआ वहां दूसरी ओर लण्डन नगर में भयानक आग लग गयी। प्रथम ने जहां सैकड़ों मनुष्यों को क्षण में ही समाप्त कर दिया वहां द्वितीय ने बहुत से शिल्पियों को घर बार रहित कर दिया। सारांश यह है कि चार्लस का राज्य विपरीत बातों तथा घटनाओं का भण्डार कहा जा सकता है। एक ओर उस राज्य में जहां उन्नतियां होती हैं वहां दूसरी ओर सत्यानाश ही सत्यानाश। वास्तविक बात तो यह है कि चार्लस के काल में जिन सुधारों ने अपना रूप प्रत्यक्ष दिखाया उनका बीज आंग्लों में कभी का बोया जा चुका था।

अन्वेषण करने की ओर प्रवृत्ति तथा जिज्ञासुता के भावों ने आंग्ल जनता को बहुत ही अधिक उत्तेजित कर दिया था। धर्म में विज्ञान तथा राजनीति में उन गुणों ने जो परिवर्त्तन

किये वे पूर्व ही दिखाये जा चुके हैं। किस प्रकार जात पांत के झगड़े मिट गये, रीति रिवाजों पर जनता का विश्वास आ गया, पादरियों की शक्ति चकना चूर हो गयी, लार्डों की शक्ति कम हो गयी। इन सब घटनाओं का पुनरुल्लेख करना पिष्ट पोषण ही करना होगा। कवि कुल गुरु कालिदास के "विषमापि अमृतं क्वचिद् भवेत् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया" इस वाक्यानुसार चार्लस की बदमाशियों ने किस प्रकार इङ्गलैण्ड को लाभ पहुंचाया इसका वर्णन कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। चार्लस प्रथम दर्जे का शराबी बदमाश, धोखे बाज़ मक्कार तथा स्वार्थी था। उसकी रण्डी बाज़ी तो इस सीमा तक बढ चुकी थी कि उसका वर्णन तक करना कठिन है। इन सब लुच्चपने तथा शोहदे पने की बातों के कारण ही वह पादरियों को बहुत ही अधिक घृणा की दृष्टि से देखता था। क्योंकि पादरी लोग उन पाप कर्मों को पसन्द न करते थे। परिणाम इसका यह हुआ कि उसने पादरियों की शक्ति को न्यून करने का यत्न किया। उसके दर्बारी लोग पादरियों पर वे अन्न अश्लीलहास्य किया करते थे। उनके लेखों तथा हास्यों से पादरियों को कुछ भी भय न लगता यदि हाब्ब नामी महाशय भी पादरियों के विरुद्ध अपनी लेखनी न उठाते। इसने पादरियों के आधार भूत सिद्धान्तों तक को इस सफ़ाई से जड़ से उखाड़ फेंका कि पादरियों के अन्दर उसके नाम तक से कंप कपी होने लगती थी। पादरी लोग "हाब्ब" की मृत्यु के अनन्तर जो कोई अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करता था उसे घृणा से हाब्बियन नाम से पुकारा करते थे। चार्लस ने "हाब्ब को अत्यन्त मान्य की

दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया था, और इसका कारण यही था कि उसने पादरियों को बुरी तरह से लतड़ा था। कहा जाता है कि चार्लस ने ह्वाइटहाल (whitehall) नामी अपने राज महल में हाव की तस्वीर टांग रखी थी। हाव जब तक जीता रहा चार्लस की ओर से उसे पैन्शन मिलती रही तथा दुश्मनों से उसने उसको स्वरक्षित रखा। चार्लस इतने पर ही यदि बस करता तब भी कोई बात थी। उसने संपूर्ण उच्च पादरियों के स्थानों पर कमीने तथा मक्कार आदमियों को पादरी के तौर पर नियत कर दिया। अच्छे तथा योग्य व्यक्तियों को वह उन स्थानों पर इस लिए नियत न करता था कि कहीं उस पद की महिमा तथा पादरियों की शक्ति न बढ़ जावे। जो कोई टेलर तथा वरौं जैसे योग्य पुरुष किसी स्थान के पादरी थे भी उन्हें भी उसने कभी भी उच्चपद पर न पहुँचाया। चार्लस की मृत्यु से कुछ ही वर्ष पूर्व पादरियों ने अपनी खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का यत्न किया परन्तु प्रजा के विरोध से वे उस शक्ति को न प्राप्त कर सके। दैवी घटना से चार्लस की मृत्यु पर कैथोलिक धर्म्मावलम्बी जेम्ज आंग्ल राज्य पर शासन करने के लिए बैठता है। अब क्या था पादरियों ने उसके साथ मित्रता बनाने का यत्न किया। जेम्ज ने स्वेच्छाचारी हो जाने की इच्छा से बहुत से व्यक्तियों को कैद में डाल दिया तथा बहुतों को देश से निकाल दिया। परन्तु पादरियों के कान पर जूं तक न रेंगी। परन्तु ज्योंही जेम्ज ने बहुत से व्यक्तियों से (Declaration of Ind ulgence) डिक्लेरेशन आफ़ इन्डलजन्स के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता देने का यत्न किया त्योंही पादरी उसके विरुद्ध हो गये। पाद-

रियों ने जेम्ज़ से विरुद्ध होकर डिसन्टर्ज (Dissenters) को अपने साथ मिलाना चाहा जिन्हें कि वह कुछ ही सप्ताह पूर्व मरवाना चाहते थे। डिसन्टर्ज भी पादरियों के धोखे में आने वाले न थे। वह बड़ी बुद्धिमत्ता से प्रत्येक बात को समझते हुए पादरियों से मिल गये। और इस प्रकार जेम्ज़ को शीघ्रता से ही राज्य पर से हटा दिया। धार्मिक स्वतन्त्रता प्रजा को देने का जेम्ज़ को जो फल मिलना था वह पूर्ण तौर पर मिला। इङ्गलैण्डने इस शान्तिमय आक्रान्ति द्वारा जिस बुद्धिमता से स्टूआर्ट (Sto-art) वंश को देश के राज्यपर से सदा के लिए निकाल दिया वह आंग्ल इतिहास में प्रसिद्ध है। इस बुद्धिमत्ता का उसे जो फल मिलना था वह विलियम तृतीय के राज्य में मिला भी। महायोग्य विलियम तृतीय ने प्राचीन इङ्गलैण्ड को जो नवीन रूप देदिया वह आंग्ल इतिहासज्ञों से छिपा नहीं है। हमें इस प्रकरण में जो कुछ कहना है वह यही है कि पादरियों ने जल्द-बाजी में आकर जेम्ज़ को निकाल तो दिया परन्तु पीछे से उन्हें हाथ पर हाथ धरकर बेहद पछताना पड़ा। विलियम धार्मिक अत्याचारों के विरुद्ध था। अतः उसने पादरियों की शक्ति को बेहद कम कर दिया। साथ ही उसने राज्य को 'दैवी संस्था' मानने वाले सिद्धान्त पर जड़ से कुल्हाड़ी लगा दी। पादरी लोग विलियम के कार्यक्रम को देखकर, आग बबूला हो गये और उन्होंने विलियम को आंग्ल सिंहासन पर से उतारने को सोचा। परन्तु इससे पादरियों को ही नुक्सान पहुँचा। क्योंकि इस अवसर पर जनता समझगयी कि इन पाद-रियों को जाति की अपेक्षा अपनी जान का ज्यादा ख्याल है।

अतः उसने विलियम को पूर्ण सहायता पहुँचाने का यत्न किया। पादरियों ने भी जेम्ज को इङ्गलैण्ड में लाने का पुनः प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। उन्होंने षड्यन्त्र रचा। उससे पत्र व्यवहार करना प्रारम्भ किया। परन्तु इन सब बदमाशियों से उलटा पादरियों को ही नुकसान पहुँचा। पादरियों की एक धार्मिक सभा प्राचीन काल से हुआ करती थी। उस के द्वारा पादरी लोग राज्य तथा प्रजा पर बड़ा भारी प्रभाव डाला करते थे। १७१७ में राज्य ने यह नियम पास कर दिया कि इस सभा की अब राष्ट्र को कुछ भी आवश्यकता नहीं है। परिणाम इसका यह हुआ कि पादरियों की शक्ति इस सभा की शक्ति कम होते ही चकनाचूर हो गयी। जनता के योग्य २ व्यक्तियों ने चर्च में काम करना छोड़ दिया। उन्होंने अपना ध्यान अन्य विषयों में लगाया जिनमें उनको अधिक लाभ प्रतीत हुआ। १५ वीं सदी तक राज्य में पादरियों को उच्च उच्च पद प्राप्त थे परन्तु इसके अनन्तर उनके राज्य में संख्या कम होने लग पड़ी। १७वीं सदी में यह दशा पादरियों की हो गयी कि उनका कोई भी व्यक्ति इङ्गलैण्ड का महा मन्त्री न बन सका। १८ वीं सदी में तो पादरी लोग इङ्गलैण्ड में प्रायः उच्च राज्याधिकारी ही नहीं रहे। असभ्यता तथा अज्ञान के युगों में इङ्गलैण्ड की लार्ड सभा में आधे पादरी तथा आधे सर्दार लोग सभ्य के तौर पर हुआ करते थे। १८ वीं सदी के आरम्भ में पादरी लोगों की संख्या लार्ड सभा में $\frac{१}{८}$ ही रह गयी। आश्चर्य्य तो यह है कि १९ वीं सदी के मध्य में इनकी संख्या

घटते घटते $\frac{1}{14}$ तक लार्ड सभा में पहुंच गयी। यही नहीं १८०१ में आंग्ल प्रतिनिधि सभा (House of Commons) ने भी अपने दरवाजे पादरियों के लिए बन्द कर दिये। इस प्रकार काल के चक्र में पड़ कर जहां पादरी नीचे गिरे वहां जनता ने भी अपना सिर उठाया। और आज कल के युग में प्रवेश किया। परन्तु किसी का गिरना या उठना प्रायः सहसा नहीं हुआ करता है। अतः सब घटना स्रोत को उचित रीति पर समझ सकने के लिए अब मैं पुनः उसी प्रकरण पर आता हूँ जहां पर कि विषय को छोड़ा था। डिसेन्टर्ज पर पादरियों ने जो अत्याचार तथा क्रूरताएं की थीं वह उसे न भूले थे। जेम्ज़ के इङ्गलैण्ड से भाग जाने पर उन्होंने उन सब पिछली बातों का पादरियों से बदला निकालना सोचा। साम्राज्ञी ऐनी (Anne) की मृत्यु पर सब के सब डिसेन्टर्ज़ एकत्रित हो गये तथा उन्होंने अपने विरोधी संपूर्ण राज्य नियमों को हटवा दिया। १८वीं सदी के दो प्रसिद्ध व्यक्ति ह्वाइट फील्ड White-field तथा ह्वीज्ले (Wesley) की मुख्यता में डिसेन्टर्ज़ ने पादरियों पर बड़ा भारी आक्रमण किया तथा उनकी शक्ति को सर्वथा नष्ट कर दिया। परन्तु यहां पर यह स्मरण ही रखना चाहिए कि पादरियों की शक्ति के तोड़ने में दो अन्य बातों ने भी बड़ा भारी भाग लिया था।

(१) धर्म (मत) का सदाचार से पृथक् कर देना।

(२) धर्म (मत) का राजनीति से पृथक् कर देना।

१७वीं सदी में धर्म से सदाचार की पृथक्ता जहां प्रारम्भ

होती है वहां १८वीं सदी के मध्य में राजनीति से भी इसको पृथक् कर दिया जाता है। धर्म को सदाचार से पृथक् करने में बिशप काम्बलैण्ड तथा बिशप वार्बर्टन ने विशेष प्रयत्न किया था। बिशप कम्बर्लैण्ड के सिद्धान्त को ह्यूम (Hume) पैले-बन्थम तथा मिल ने मान कर जहां अपने सिद्धान्तों की व्याख्या की थी वहां बिशप बावटन के सिद्धान्त को आंग्ल राज्य नियम वेत्ताओं ने अवलम्बन कर अपने विषय को विशेष उन्नति दी तथा आंग्ल नियम निर्माण विधि का आधार रखा। इन्हीं दिनों में जहां आंग्लों की मानसिक उन्नति प्रारम्भ हो गयी थी वहां जनता में भी विशेष चैतन्यता उत्पन्न हो गयी थी। प्रथम प्रथम में आंग्ल अधः श्रेणी के लोगों के लिए एक विद्यालय खोला गया जिससे वह अपने आराम के समय में स्वाध्याय कर सका करें। देश में भ्रमणीय पुस्तकालय खुल गये। मुद्रण का कार्य लण्डन के साथ साथ अन्य स्थानों में भी फैल गया। इसी अट्ठारवीं सदी में विज्ञान को सर्व प्रिय बनाने का यत्न किया जाने लगा। तथा विज्ञान की पुस्तकें सरल भाषा में लिखी जानी प्रारम्भ की गयीं एन्साई क्लोपीडिया (महाकोष) बनाने का कई एक विद्वानों ने प्रयास किया तथा उसमें सफल हुए। यही नहीं, वह यही अट्ठारवीं सदी थी जिसमें कि मासिक पत्रों ने अपना प्रथम रूप इंगलैण्ड में प्रकट किया पत्रों तथा पुस्तकों के ख़रीदने के लिए सभाएं तथा समितियां नई २ बनायी जाने लगीं। सारांश यह है कि प्रत्येक विभाग में उन्नति ही उन्नति अट्ठा-

रवीं सदी में प्रारम्भ हो गयी। इसी सदी के मध्य में ही **व्यापारीय समितियों** का निर्माणहोता है जिसमें कि व्यापारीय व्यावसायिक विषयों की पर्य्यालोचना की जाती थी। अधिक क्या कहें। यह १७६९का ही सन् था जिसमें कि पहिले पहिल सम्पूर्ण देश की एक राजनैतिक सभा लगती है जिसमें कि जनता को अपने अधिकारों का पूरी २ तरह से ज्ञान प्राप्त होता है। न्यायालय के निर्णयों तथा राज नियमों का अध्ययन भी बहुत से लोग इन्हीं दिनों में प्रारम्भ करते हैं। पारलियामेण्ट की कार्यवाही तथा राजनैतिक विवादों को प्रेस ने छापना प्रारम्भ कर दिया, तथा, इङ्गलैण्डमें पहिले पहिल जातीय प्रेस ने अपना रूप प्रकट किया। प्रेस की इस स्वतन्त्रता पर राज्य ने बहुत ही विघ्न डालने के यत्न किए परन्तु राज्य को सफलता सर्वथा ही न प्राप्त हो सकी। पत्रों तथा पुस्तकों की भाषा के सरल होने से साधारण से साधारण जनों का विद्या के प्रति प्रेम बढ गया। विद्वान् लोगों ने पत्रों में लिखना भी बेहद स्वच्छन्दता से प्रारम्भ किया। सारांश यह है कि इङ्गलैण्ड, अट्ठारवीं सदी में प्राचीन से सर्वथा **नवीन** हो जाता है। आंग्ल जनता के नवीन आविष्कारों तथा वैज्ञानिक उन्नतियों के करने में प्रवृत्ति बढ़ जाती है तथा प्राचीन भ्रमात्मक विश्वासों का उनमें से लगभग सर्वथा ही लोप हो जाता है। इन सब परिवर्त्तनों में राजनैतिक कारणों का भी बड़ा भारी हाथ है। जार्ज तृतीय (George III) से पूर्व के आंग्ल राजा इंगलैण्ड से सर्वथा अपरिचित थे इङ्गलिश भाषा को भी पूर्ण तौर पर न समझ सके थे। इस दशा में वे इङ्गलैण्ड में प्रजा की **स्वतंत्रता** को दल बना कर पद-

दलित करने में सर्वथा ही असमर्थ थे। पादरियों के साथ भी उन्हें सहानुभूति न थी क्योंकि उन्हें इङ्गलैण्ड के अन्तरीय झगड़ों का ज्ञान ही न था। कुछ समय के राज्य के बाद उनका पादरियों से **वैमनस्य** प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि पादरी लोग राजा के विरुद्ध कार्य कर रहे थे। इन सब बातों से उन्नति शील इंगलैण्ड को बेहद लाभ पहुँचा। यदि विघ्न पड़ जाते तो जिस उन्नति ने बहुत समय लेना था अब वह विघ्न न पड़ने से शीघ्र ही प्रारम्भ हो गयी।

जार्ज प्रथम तथा द्वितीय के काल में आंग्ल जनता में उदार दल की जो प्रधानता रही उसका इसी से अनुमान किया जा सकता है कि ४० वर्षों तक प्राचीन **टोरी** दल के राज्यकार्य में कोई भाग न ले सका। जार्ज द्वितीय की मृत्यु पर इङ्गलैण्ड की प्राचीन अवस्था पुनः बदलती है। उसकी उन्नति में जार्ज तृतीय पुनः कांटे बिछाना प्रारम्भ कर देता है। तुच्छ अगम्भीर ऐतिहासिक तो यहां समझा करते हैं कि **जार्ज तृतीय** के राज्यारोहण से इङ्गलैण्ड को बेहद लाभ पहुंचा क्योंकि नवीन राजा आंग्ल जनता से परिचित था. आंग्ल भाषा अच्छी तरह से बोलसकता था और सब से बड़ी बात यह कि "**हैनौवर**" (Hanover) प्रान्त को एक विदेशीय प्रान्त समझता था। परन्तु गम्भीर विचार के ऐतिहासिक ऐसा नहीं समझते हैं। **जार्ज** तृतीय उन्नति का द्वेषी था। उसे प्राचीन भ्रमात्मक बातों पर ही विश्वास था। पादरियों ने इस नवीन राजा के गीत गाने प्रारम्भ किये। प्राचीन टोरी दल ने भी राज्य में प्रबलता प्राप्त की। जार्ज तृतीय स्वभाव से स्वेच्छाचारी तथा राजा के दैवी अधिकार मानने वाला

था। प्रत्येक प्रकार के उदार विचारों से उसे घृणा थी। विदेशों के भूगोल से अपरिचित, विद्या विज्ञान से रहित, अज्ञानान्धकार में लीन जार्ज तृतीय जिस आंग्ल जनता पर राज्य करने बैठा वह उसकी अपेक्षा किसी सीमा तक विचारों में उच्च तथा उदार थी। इस प्रकार के राजा से देश को जो कुछ मिल सका था वह किसी से छिपा नहीं है। उसने अपने चारों ओर उस दल के लोगों को एकत्रित कर लिया जो कि विद्या विज्ञान के द्वेषी थे। अपने ६० साठ वर्ष के राज्य में पिट्ट को छोड़कर उसने किसी योग्य आंग्ल पुरुष को राज्यकार्य में हाथ न देने दिया। पिट्ट भी अपने प्रसिद्ध पिता के कथन पर न चलकर तथा उन उदार सिद्धान्तों को छोड़कर ही राज्य कार्य में हाथ दे सका। यदि वह ऐसा न करता तो जार्ज तृतीय उसे राज्य में कभी भी हाथ न देने देता। पिट्टने जो कुछ अपने स्वभाव में परिवर्त्तन किये उन्हें इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

(१) जार्ज तृतीय को सुधारों से घृणा थी। अतः पिट्टने उन कार्यों की ओर ज़ोर देना छोड़ दिया जिन कार्यों को वह कुछ ही समय पूर्व बेहद आवश्यक समझता था।

(२) जार्ज तृतीय दासत्व की रीति को बहुत ही उत्तम समझता था। उसका विचार था कि यह रीति उसके पूर्वजों की बेहद बुद्धिमत्ता का चिन्ह है। परिणाम इसका यह हुआ कि पिट्टने भी इस रीति के दूर करने के लिए ज़ोर न दिया और यह उसके अगले ही महान् पुरुष के भाग्य में था कि उसने दासत्व की घृणित प्रथा को दूर किया। पिट्टने इस महती कीर्त्ति के कार्य को अपनी चाल बाज़ी तथा जार्ज

तृतीय की मूढ़ता के कारण न कर सका।

(३) जार्ज तृतीय को फ्रेन्च जनता के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। वह फ्रान्सीसियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। पिट्ट ने जार्ज तृतीय के कारण ही आंग्ल जनता को फ्रान्सीसियों से लड़ा दिया। जिसमें आंग्लों पर बेहद जातीय ऋण का भार पड़ गया। आज तक आंग्ल उस ऋण से मुक्त न हो सके हैं।

(४) यही नहीं, जब अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व पिट्ट ने आयर्लैण्ड वालों को उनके कुछ अधिकार देने का यत्न किया। जार्ज तृतीय ने उसे महामंत्री पद से पृथक् कर दिया। राजा के मित्र लोग ऐसे महा मन्त्री के कब यश को गा सकते थे जो कि राजा की इच्छाओं के विरुद्ध चले। पिट्ट ने जब कभी राज्याधिकार पाने का यत्न किया उसे छल करना ही पड़ा। पिट्ट ने आत्मविचारों को एक स्वेच्छाचारी राजा के विरुद्ध दबा कर आंग्ल जनता के सामने बहुत ही बुरा दृष्टान्त रखा।

(५) जार्ज तृतीय के समय में इंगलैण्ड के राज्य में उच्च से उच्च पदों पर अयोग्य व्यक्तियां ही वर्तमान थीं। क्योंकि राजा को तो प्रत्येक उत्तम तथा उचित बात से स्वाभाविक घृणा थी। जार्ज द्वितीय के काल में बड़े पिट्ट ने वह २ उत्तम काम किये थे जिन्होंने न केवल उसीके ही नाम को उज्वल किया किन्तु इङ्गलैण्ड की कीर्ति को भी दिग् दिगन्त में फैला दिया। जार्ज तृतीय बड़े पिट्ट का सख़्त विरोधी था। उसको बड़े पिट्ट के प्रति जो घृणा थी उसका वर्णन करना कठिन है।

फाक्स १८ वीं सदी का सब से बड़ा राजनीतिज्ञ था। फाक्स को विदेशीय राष्ट्रों का अच्छी तौर पर ज्ञान था। इन योग्यताओं के साथ साथ उसके स्वभाव के माधुर्य ने उस पर 'सोने में सुगन्ध' वाला काम किया। वह धार्मिक स्वतन्त्रता तथा राजनैतिक सुधारों का बड़ा भारी पक्षपातीथा। जार्ज तृतीय ऐसे उदार व्यक्ति को भला कब पसन्द कर सकता था? राजा ने स्वयं अपनी कलम से गुप्त सभा के सभ्यों में से उस का नाम काट दिया तथा कहा कि उसे राज्य छोड़ देना पसन्द है अपेक्षा इसके कि फाक्स को राज्य कार्य में हस्ताक्षेप करने का अवसर प्राप्त हो।

जिस समय ये बुरी बातें आंग्ल शासन में दिन पर दिन उत्पन्न हो ही रही थीं उसी समय एक और बुरी बात उसमें उत्पन्नहो जातीहै जिसका वर्णन कर देना अत्यन्त आवश्यकीय प्रतीत होता है। जार्ज तृतीय के राज्यारम्भ में **आंग्लप्रतिनिधिसभा** (House of commons) आंग्ललार्ड सभाकी अपेक्षा उदारता में तथा धार्मिक स्वतन्त्रता के विचारों में न्यून थी। इसमें सन्देह नहीं है कि आज कल की अपेक्षा उन दिनों की दोनों ही सभाएं संकुचित विचार की कही जानी चाहियें परन्तु हम तो उस समय की बात लिख रहे हैं जब की अज्ञानता तथा भ्रमात्मक विश्वास का ही जनता में साम्राज्य था। जार्ज तृतीय के समय से पूर्व तक आंग्ल लार्ड सभा की शक्ति अत्यन्त अधिक थी। क्योंकि प्रत्येक प्रकार के सुधार पहिले पहिल वही पेश करते थे। इसका कारण यह था कि उन दिनों में लार्ड लोग विद्या आदि का जनता की अपेक्षा अधिक अभ्य-

पन किया करते थे। प्रतिनिधिसभा अत्यन्त संकुचित विचार की थी। प्रतिनिधि सभा के आक्रमणों से जनता के योग्य योग्य सुधारकों को लार्ड सभा ही बचाया करती थी। **सोमर्स तथा वालपोल** (somers and walpole) धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। प्रति निधि सभा के पञ्जे से इन दोनों महान् पुरुषों को लार्ड सभा ने ही कई बार बचाया था **डिसेन्टर्ज** के विरुद्ध नियमों को भी प्रतिनिधि सभा ने ही पहिले पहिल पास किया था। लार्ड ने भी यद्यपि उन नियमों को पास कर दिया था परन्तु उसमें ऐसी २ कांट छांट कर दी थीं जिससे उसकी कठोरता बहुत ही कम रह गयी थी। जार्ज द्वितीय तक लार्ड सभा प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा अधिक उदार थी परन्तु जार्ज तृतीय ने इसमें भी उलट पलट कर दिया। लार्ड सभा की आकृति को ही उसने सर्वथा पलट दिया उसने लार्ड सभा में ग्रामीण अनुदार विचार वाले अशिक्षित धनाढ्यों को इस सीमा तक भर दिया जिसका वर्णन करना कठिन है। कुछ एक संकुचित विचार वाले वकीलों को भी उसने लार्ड सभा में लार्ड बनाकर घुसेड़ दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि लार्ड सभा सुधार की पक्षपातिनी होने के स्थान पर उसकी विरोधिनी हो गयी अच्छे २ विचारकों राजनितिज्ञों, तथा विद्वानों से लार्ड सभा सर्वथा शून्य सी हो गयी। ज्यार्ज तृतीय के राज्य में एक महान् व्यक्ति एड्मन्ड **वर्क** नाम वाला उत्पन्न हो गया था अतः उसपर कुछ शब्द यहां पर लिख देने आवश्यक ही प्रतीत होते हैं। वर्क का स्वाध्याय बेहद अधिक था। स्मृति शास्त्र (jurispen-

dence) में जहां वह एक तौर पर प्रामाणिक गिना जाता था वहां राजनीति में भी उसकी योग्यता किसी से कम न थी। भाषा शास्त्र तथा इतिहास के अनुशीलन करने में भी उसने अपना समय लगाया था आदमस्मिथ (सम्पत्ति शास्त्र का जन्मदाता) जिस समय लन्डन में गया तथा वर्क से मिला उस समय उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। क्योंकि जिन सिद्धान्तों के निकालने में उसके बहुत से वर्ष खर्च हुए थे उनको वर्क पहिले से ही निकाल चुका था। वर्क में सबसे अधिक आश्चर्य की बात जो कही जा सकती है वह यह है कि वर्क एक मात्र विचारक ही विचारक न था। जो कुछ वह सोचता था उसको कार्य में भी सहज से ही ले आता था। वर्क आंग्ल राजनैतिक इतिहास में जो आक्रान्ति लाया उसका वर्णन करना कठिन है। वर्क ने ही पहिले पहिल इङ्गलैण्ड में यह प्रकट किया कि "राज्य का कार्य जनता के सुखकी वृद्धि को करना है तथा जनता की इच्छा के विपरीति न चलना है"। इसने तुच्छ २ राजनीतिज्ञों की सम्मति के विरुद्ध प्रबल आवाज़ भी उठायी। जार्ज तृतीय तो वर्क को भी पसन्द न करता था। उसके लिए वर्क भी वैसा ही था जैसे कि फाक्स तथा कैथम (Chatham) अतः वह वर्क को राज्य में उच्च पद कब देने लगा था। यही कारण था कि वर्क जार्ज तृतीय के आरम्भ आरम्भ के ३० वर्षों में मन्त्रिमण्डल (Cabinet) का एक बार भी सभासद् न बन सका। वर्क ने व्यापार की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक सहिष्णुता पर बड़ा भारी बल दिया। उसने बहुत बार यह यत्न किया कि डिसेन्टर्ज के

विरुद्ध राज्य नियम सर्वथा हटा दिये जावें तथा उन्हें भी राज्य कार्य में हाथ देने का अधिकार दिया जावे। यही नहीं वर्क ने कठोर राज्य नियमों को कोमल करने की प्रार्थना की तथा मनुष्यों को जीवन भर के लिए सैनिक बनाने की प्रथा को दूर करने के लिए और दास व्यापार को बंद करने के लिए अपनी आवाज़ उठायी। परन्तु वर्क को अ... इच्छाओं में सफलता न प्राप्त होसकी। आंग्ल राज्य वर्क के लिए सबसे अधिक यदि किसी बात में कृतज्ञ है तो वह अपने आय व्यय विभाग के सुधार में। वर्क ने जिस बुद्धिमत्ता से इङ्गलैण्ड का व्यर्थ व्यय कम कर दिया उसका वर्णन करना कठिन है। कहा जाता है कि उसने केवल एकही विभाग से २५००० पाउण्ड की वार्षिक बचत करवा दी थी। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि वर्क के प्रति राजा के विचार कोई अच्छे न थे। अमेरिकन युद्ध के समय में तो राजा वर्क से बहुत ही चिढ़ गया। इसका कारण यह था कि राजा तो अमेरिकन को कुछ भी अधिकार न देना चाहता था परन्तु वर्क राजा की सम्मति से सर्वथा विरुद्ध था। वर्क का कथन था कि अमेरिका इङ्गलैण्ड से बहुत दूर है तथा उसके शासन से इङ्गलैण्ड को घाटा ही घाटा है लाभ बहुत थोड़ा है अतः अमेरिकनों को कर आदि लगाकर व्यर्थ के लिए तंग करना अच्छा नहीं है। जो कुछ भी हो, राजा ने वर्क को इन उदार सम्मतियों के बदले जो कुछ दिया वह यह था कि उसे अपने ३० वर्षों के राज्य में एक वार भी उच्च राज्यधिकारी न बनने दिया। जार्ज का राज्य मूर्खों अन्धविश्वासियों तथा खुशा-

मदियों के लिये तो स्वर्णीयराज्य था। फ्रेञ्च आक्रान्ति के दिनों में वर्क का जीवन कष्ट युक्त होने लगता है। पुत्र की मृत्यु पर उसका वह कष्ट और भी अधिक बढ़ जाता है। मृत्यु पर्यन्त वर्क की जो दशा रही है उसका वर्णन करना कठिन है।

वर्क को फ्रेञ्च अक्रान्ति पसन्द न थी। इस एक घटना में ही उसके साथी तथा मित्र उससे पृथक् हो जाते हैं। फाक्स वर्क को अपना गुरु समझता था। वर्क भी फाक्स को प्रेम की दृष्टि से देखाता था तथा उसकी योग्यताओं को भी अच्छी तरह से जानता था। परन्तु विना किसी प्रकार के वैयक्तिक कलह के ही दोनों की पुरानी मित्रता क्षण भर में ही नष्ट हो जाती। है चूंकि फाक्स को फ्रेञ्च जनता की स्वतन्त्रता पर बाधा डालना स्वीकृत न था अतः वर्क ने पार्लियामेंट के बीच में कह दिया कि वह फाक्स से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता है चूंकि फाक्स फ्रेञ्च जनता को सहायता पहुँचाने के पक्ष में है। कई लोगों की सम्मति है कि वर्क ने फ्रेञ्चजनता की बुराइयों को देख कर उनका विरोध किया था। परन्तु यह कहना कठिन नहीं प्रतीत होता है क्योंकि फ्रेञ्च आक्रान्ति में प्रबल हाथ देने वाले कान्डोर्सट् (Condorcet) तथा ला फेटी (Lofayette) की विद्वत्ता तथा सदाचारता पर कौन नज़र उठा सकता है। जब तक हम लोगों में विद्या का मान्य रहेगा तब तक कान्डोर्सट् का भुलाया जाना कठिन है। कान्डोर्सट् अपने समय का एक विद्वान् था। लाफेटी यद्यपि कान्डोर्सट्

के सदृश विद्वान् न था परन्तु उसमें सदाचारता तथा वीरता कूट कूट कर भरी हुई थी। लाफेटी वाशिंगटन का बड़ा घनिष्ट मित्र था। लाफेटी वाशिंगटन के साथ साथ अमेरिका की स्वतन्त्रता के लिए इङ्गलैण्ड के विरुद्ध लड़ा था। अधिक क्या कहें। लाफेटी का चरित्र आदर्श चरित्र था। लाफेटी की वीरता आदर्श वीरता थी। परन्तु वर्क को इन बातों की कुछ भी कदर न थी। उसका दिमाग जब पलट गया उसको कौन सुधार सकता था। कान्डोर्सट् को जहां वर्क ने नास्तिक तथा क्रूर प्रजा समात्मक राज्य पक्षपाती का पद दिया वहां लाफेटी को गंवार का। यही नहीं, वर्क ने अपने अन्तिम दिनों में फ्रेञ्च जातीय सभा को जो जो अपशब्द कहे उनका वर्णन करना कठिन है) ऐसा परिवर्तन वर्क में क्यों आ गया इसका तो उत्तर देना कठिन है। परन्तु इस प्रकरण में जो कुछ कहना है वह यह है कि वर्क जब इस प्रकार की बुरी अवस्था में पहुंच गया था तब राजाने उसके प्रति अपनी दृष्टि फेरी। क्योंकि राजा तो उदार विचारों का द्वेषी था। उसे व्यक्ति से तो कोई विशेष द्वेषथा ही नहीं। वर्क जब संकुचित विचार का होगया, तब राजा की उसपर कृपा होनी तो स्वाभाविक ही थी। कहा जाता है कि राजा ने वर्क को उसकी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व ४०००० पाउन्ड के लगभग पैन्शन के तौर पर दिया तथा अपनी इच्छा प्रकट की कि वह वर्क को लार्ड भी बनाना चाहता है जिससे लार्ड सभा को उसके विचारों से लाभ पहुँच सके। यहां पर एक बात लिख देना मैं आवश्यक समझता हूँ वह यह है कि जार्ज द्वितीय के समय में राज्य

ने जिन २ बातों को अवलम्बन करना उचित नसमझा था जार्ज तृतीय के समयमें वही बातें काम लायी जाने लगती हैं। दृष्टान्त तौर पर ज्यार्ज तृतीय की सम्मति थी कि अमेरिकन पर इङ्गलैण्ड के हित के लिए कर लगानाही बुद्धिमत्ता का कार्य है तथा यही उचित राजनीति है।- जार्ज के राज्य पर बैठने के तीन वर्ष बाद ही पारलियामेन्ट में अमेरिकन पर कर लगाने के विषय में एक प्रस्ताव, पेश होता है। और बिना किसी प्रकार की रुकावट के पास कर दिया जाता है। इन अत्याचारों से तंग होकर अमेरिकन लोग विद्रोहकर देते हैं तथा सदा के लिए इङ्गलैण्ड के पञ्जे से निकल जाते हैं। इङ्गलैण्ड को इससे जो धक्का पहुँचा उसका वर्णन करना कठिन है। इङ्गलैण्ड का व्यापार व्यवसाय बहुत कुछ रुक गया। १४०००००० पाउण्ड का व्यय इङ्गलैण्ड को अमेरिका के साथ में लड़ने में उठाना पड़ गया, अमेरिका की स्वतन्त्रता के रोकने के कारण इङ्गलैड की जो बदनामी हुई उसका वर्णन करना भी कठिन है।

जार्ज तृतीय के राज्य का इङ्गलैण्ड को पहिला जो फल मिलना था वह यह था। परन्तु जार्ज के राज्य की बुराइयां इसी तक परिमित न थी। जार्ज की विचित्र प्रकृति के कारण ही इङ्गलैण्ड को फ्रेञ्च जाति की स्वतन्त्रता में बाधा डालने का यत्न करना पड़ा। फ्रेञ्च जनता स्वेच्छाचारी राज्य से अत्यन्त तंग हो चुकी थी। सदियों के क्रूर तथा अत्याचार पूर्ण व्यवहार से उनके दिल गुस्से से भर गये थे। वे लोग स्वेच्छाचारी शासकों के पञ्जे से अपने आपको छुड़ा कर स्वतन्त्र करना चाहते थे तथा अपने देश में शासन का कार्य प्रतिनिधि

सत्तात्मक राज्य प्रणाली, द्वारा करना चाहते थे। परन्तु इङ्गलैण्ड ने उनके इस पवित्र कार्य में विघ्न डाला। यदि इङ्गलैण्ड विघ्न न डालता तो फ्रेञ्च आक्रान्ति शीघ्र ही समाप्त हो जाती तथा फ्रांस में शान्ति का राज्य प्रारम्भ हो जाता। जो कुछ भी हो जार्ज को किसी बात को क्या परवाह थी। उसे तो फ्रांस से लड़ना ही था तथा अपनी दुश्मनी निकालनी थी। इङ्गलैण्ड में कुछ ही समय पूर्व जिस प्रकार अमेरिका के प्रति अपशब्द निकाले जाते थे फ्रेञ्च आक्रान्ति के प्रारम्भ होने पर फ्रांस के प्रति उससे भी बुरे शब्द निकाले जाने लगे इस सब घटना चक्र का जो परिणाम होना था हुआ। इङ्गलैण्ड जान बूझ कर फ्रांस से लड़ पड़ा। सारा का सारा यूरोप खतरे में पड़ गया। दिन रात युद्ध ही युद्ध सम्पूर्ण यूरोप में होने लगा २० वर्ष तक लगातार यूरोप की जो दुर्गति हुई उसका वर्णन करना कठिन है। इस सब में इङ्गलैण्ड का बड़ा भारी हाथ समझना चाहिए। सब से विचित्र तो बात यह थी कि इङ्गलैण्ड ने फ्रांसीसियों से इस लिए लड़ाई छेड़ी थी चूंकि वह अपनी शासनपद्धति में कुछ सुधार करना चाहते थे। युद्ध के आरम्भ होने पर आंग्ल राज्य ने अपने हाथ में दो काम लिए।

(१) अपने घर पर प्रत्येक प्रकार के सुधारों को रोकना।

(२) फ्रांस में प्रजा सत्तात्मक राज्यको न होने देना।

प्रथम बात को करने में तो आंग्ल राज्य ने इङ्गलैण्ड में ही पर्याप्त खून की नदियें बहादीं तथा प्रायः कोई ही ऐसा परिवार रह गया होगा जिसमें रोने की आवाज न सुनायी पड़ती हो। दूसरे कार्य करने के लिए आंग्ल राज्य ने जनता की स्वत-

न्त्रता पर बड़ा भारी आघात पहुँचाया । जनता यदि बल पूर्वक तथा अनन्त प्रयास से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न प्रवृत होती तो इङ्गलएड की यह दशा न रहती जो कि आज दीख रही है। आंग्ल राज्य ने प्रेस पर तथा स्वतन्त्र समितियों पर जो अपना क्रूर शासन करना चाहा तथा उनकी स्वतन्त्रता को लताड़ना चाहा उसका यदि अनुमान करना हो तो इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि निम्न लिखित महान् पुरुषों को राज्य ने उनकी स्वतन्त्र सम्मति के कारण अपराधी ठहराया ।

(१) आदमूज़ (२) बोने Bouney (३) क्रास फील्ड Cross Field (४) फ्रास्ट Frost (५) जिरैल्ड Gerald (६) हार्डे (Hardy) मार्गो राट् Morgorat (८) मार्टिन Martin (९) हार्ट (१०) हाड्सन (११) हालकाफ्ट (१२) जापस (१३) किड्ड (१४) लैम्बर्ट (१५) मूर Muir (१६) पामर Palmer (१७) पेरी (१८) हिकावक् (१९) स्टैनडि (२०) थेल्वाल (२१) टुक (२२) वेक फील्ड (२३) वार्डल (२४) विन्टर्वाथम १७९५ में आंग्ल राज्य ने एक नियम पास किया जिसके अनुसार प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक सभाओं का करना बन्द कर दिया। और यदि किसी को करनी भी हो तो उसे राज्य की आज्ञा लेनी पड़ती थी। यही नहीं राज्य जिसे "विरोधी" समझे उसे पकड़ कर कैद कर सकता था । १७९९ में एक और नियम पास किया गया जिसके अनुसार किसी स्थान पर भी व्याख्यान देना राज्य नियम विरुद्ध ठहरा दिया गया। यही नहीं प्रत्येक स्थिर तथा भ्रमाणीय पुस्तकालय राज्य के

निरीक्षण में कर दिया गया। कोई भी पुरुष राज्य की आज्ञा के बिना किसी प्रकार के भी पत्र आदि को घर में न मंगा सकता था। यदि कोई पुरुष इस राज्य नियम को तोड़े तो उस पर १०० पौन्ड प्रति दिन के हिसाब से जुर्माना किया जाता था। और जो पुरुष ऐसे पुरुषों को सहायता पहुँचाते थे उन पर २० पौन्ड प्रतिदिन का दण्ड नियत किया गया। फाक्स ने खुले शब्दों में इन राज्य की बाधाओं का विरोध किया परन्तु राज्य ने उसकी कुछ भी न सुनी। मन्त्रीदल जातीय दोनों सभाओं में बहुपक्ष प्राप्त कर प्रजा की स्वतन्त्रता के घात में जो चाहते थे करते थे। उनदिनों में इङ्गलैण्ड में भय का राज्य था यह कहना अत्युक्ति करना न होगा। सुधारक महानुभावों का जीवन तथा जान माल खतरे में पड़ गया था। उनकी प्राइवेट चिट्ठियां डाक खाने में खोल कर पढ़ डाली जाती थीं। राज्य के विरुद्ध जो आवाज़ उठाने का यत्न करता था उसे राष्ट्र का शत्रु उद्घोषित करदिया जाता था। गुप्तचरों ने प्रत्येक मनुष्य के नाक में दम कर दिया था। प्रत्येक व्यवसाय पर कर लगादिये गये थे। विचित्रता तो यह थी कि प्रायः यह संपूर्ण के संपूर्ण कर टेढ़े तौर पर जनता पर ही पड़ते थे। जनता पहिले से ही अत्याचारों तथा कठोरताओं से तंग थी। इन सब घटनाओं को देखकर कई एक आंग्ल राजनीतिज्ञों का तो यह ख़्याल तक होगया था कि थोड़े से समय में ही इङ्गलैण्ड में स्वेच्छाचारी राज्य प्रारम्भ हो जावेगा तथा जनता की स्वतन्त्रता को सदा के लिए पद दलित कर दिया जावेगा। इस प्रकार यह दिखा दिया गया कि जार्ज तृतीय के काल में राज्य की क्या दशा थी और जनता की

विद्या विज्ञान की क्या दशा थी। उन दिनों में राज्य जिस मार्ग का अवलम्बन कर रहा था जनता के विद्या विज्ञान प्रेम उससे विपरीत। परिणाम इसका यह हुआ कि राज्य की अवनति विद्या विज्ञान की उन्नति से कट गयी। राज्य जो अपराधियां करता था जनता अपनी मानसिक उन्नति से शीघ्र ही उनका उपाय कर देती थी। आंग्ल इतिहास से जो कुछ हमें बड़ी भारी शिक्षा मिलती है वह यही है कि राज्य का जनता की सम्मति के विरुद्ध चलना वृथा है। क्योंकि राजा तथा प्रजा के कलह में प्रजा की ही विजय होती है। यह क्यों? यह इसी लिए कि राजा के पक्षपाती थोड़े ही व्यक्ति होते हैं परन्तु प्रजा में बहुत ही अधिक व्यक्ति शामिल होते हैं। इस दशा में पूर्व शक्ति की सहायता से कुछ समय तक तो राजा प्रजा को दबा सकता है परन्तु अधिक समय तक नहीं। अन्त में प्रजा ही राजा पर प्रबल हो जाती है तथा अपनी इच्छाओं तथा सम्मतियों पर राजा को चलने के लिए बाधित कर देती है। यह एक सत्य है जिसका अपलाप करना साहस करना ही होगा। परन्तु आंग्ल इतिहास के जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय इस सचाई का किसी को भी ध्यान न था। उन दिनों में समझा जाता था कि राज्य अल्प व्यक्तियों का बना हुआ होता है और जिसका कि काम है प्रजा पर स्वेच्छा पूर्वक शासन करे। साथ ही यह भी समझा जाता था कि नियम निर्माण करना अल्प व्यक्तियों का ही काम है। प्रजा का काम है कि वह बने हुए राज्य नियमों पर सदा चला करे आंग्ल। प्रजा ने जिस चातुर्य से अपने आपको राज्य के स्वेच्छाचारि-

त्व से बचाया यह आदर्श है। इस बात में यूरोप का कोई भी जाति आंग्लों का मुकाबला नहीं कर सकी है। जो काम अन्य जातियों ने भयानक आक्रान्तियों द्वारा किये हैं आंग्लों ने उन्हें सहज से ही कर डाला है। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व मैं कुछ एक शिक्षाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूं जो कि हमें आंग्ल इतिहास से मिलती हैं।

(१) राज्य को प्रजा की इच्छाओं के प्रतिकूल न चलना चाहिए।

(२) राज्य का प्रजा को अपनी इच्छाओं के अनुसार चलाने का यत्न करना वृथा है।

(३) राज्य सभ्यता का कारण नहीं है अपितु कार्य है।

(४) राज्य को समय के अनुसार प्रत्येक प्रकार के परिवर्त्तनों के करने में सर्वदा सन्नद्ध रहना चाहिए। इत्यादि...

इति

प्रथम परिच्छेद

पर परिशिष्ट

(क)

सभ्यता का इतिहास

महाशय बक्ल का कथन है कि "प्रत्येक विद्वान् ने अभी-तक राष्ट्रों के अङ्गभूत व्यक्तियों के इतिहास को तो देखने तथा बनाने का यत्न किया है, परन्तु यह हमारे अभाग्य की बात है, कि राष्ट्र के इतिहास पर अभी तक किसी ने भी लिखने का यत्न नहीं किया है।" इसी के आगे चल कर वह लिखता है कि "योग्य से योग्य ऐतिहासिक, विज्ञान के जन्मदाताओं के मुकाबले में बहुत ही नीचे हैं"। परन्तु बक्ल के इस उपरि लिखित कथनों से हमारी सहमति नहीं है। क्योंकि उनमें सत्यता का अभाव है। इस बात में मैं बक्ल के साथ सहमत हूँ कि इतिहास की दार्शनिक दृष्टि से आलोचना अत्यन्त आवश्यक है। अधिक क्या। दर्शन शास्त्र भी बिना इतिहास की सहायता के पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता है। दर्शन शास्त्र पर इतिहास टिप्पणी का काम करता है। सोलहवीं सदी में दर्शन शास्त्र के अन्दर परिवर्तन प्रारम्भ होता है। मध्य काल में दर्शन शास्त्र के अन्दर जहां 'धर्म' की प्रधानता थी वहां आज कल मनोविज्ञान की। इतिहास के अन्दर बेकन की विचार शैली का १८ वीं सदी में प्रयोग प्रारम्भ होता

है। पहिले पहिल सार्वभौम इतिहासमें दार्शनिक शैली का प्रयोग लैसिङ् (Lessing) ने किया। इसने 'मनुष्य जाति की शिक्षा (Education of the Human Race) नामी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। लैसिङ् की इस पुस्तक ने संसार का बड़ा भारी उपकार किया। इतिहास तथा धर्म को, शास्त्र का नाम इसी की शैली के अवलम्बन करने से मिला। अधिक क्या कहें। इस पुस्तक ने जनता को "सार्वभौमराज्य" का पहिले पहिल भाव दिया। इसके अनन्तर फ्रेञ्च आक्रान्ति से प्रभावित होकर कान्ट ने भी सार्वभौम इतिहास के निर्माण का इरादा किया। परन्तु उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। कान्ट के अनन्तर हीगल ने ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या प्रारम्भ की। हीगल के लिए एक विद्वान् का कथन है कि "हीगल के लिए तो दार्शनिक विचार भी इतिहास में परिवर्त्तित हो गये थे (१) कान्ट की प्रधानता के ३० वर्ष बाद हीगल ने भी सार्वभौम इतिहास के निर्माण का विचार किया था। हीगल के जीवन चरित लिखने वाले का कथन है कि "इतिहास विज्ञान को ही हीगल के दार्शनिक विचार जायदाद में मिले।" (२) इसी प्रकार क्राज़ (Krause) ने इतिहास तथा दर्शन शास्त्र को मिलाने का यत्न किया।

---

(१) "For hegel the philosophical problem had converted itself into an historical one"

(Hayno) Hegel wend seive zeit p. 45)

(२) "It is for historical science to enjoy the inheritance of hegel's philosophy."

(Hayno-Flied)

परन्तु बक्क को इन महाशयों का कुछ भी पता नहीं था। बक्क ने दार्शनिक दृष्टि से इतिहास के विचार करने की नवीन शैली निकाली यह समझना सर्वथा गलती करना होगा। बक्क ने एक बात अवश्यमेव नयी निकाली वह यह कि 'कुछ एक असत्य सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध करने के लिए किस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं का खोल चढ़ाया जा सकता है? लोग बक्क के पुस्तकों के अध्ययन से ही बक्क के विचारों के अनुगामी होने लगते हैं क्योंकि वह तो यह समझ बैठते हैं कि इतनी पुस्तकें पढ़ा हुआ गलतियां कैसे कर सकता है'। बक्क ने अपने समय के बहुत से ऐतिहासिक विद्वानों की पुस्तकों से कोई सहायता न ली, इस पर हमें अत्यन्त आश्चर्य होता है। बक्क के समय में संसार प्रसिद्ध तीन बड़े २ ऐतिहासिक विद्यमान थे। जिनके नाम निम्न लिखित हैं।

(१) १८५३ में एक फ्रेञ्च विद्वान् गोविना (M, de. Gobinean) नामी ने 'सभ्यता का इतिहास लिखा' जिसमें उसने मनुष्य समाज की उन्नति तथा अवनति के नियमों को प्रकट किया। उसकी सम्मति थी कि 'सभ्यता की उन्नति' अवर्ण संकरता (On purity of blood) पर निर्भर करता है। उसका कथन है कि 'एक राष्ट्र का कभी भी अधःपतन नहीं हो सकता है यदि वह सदा से एक ही जातीय तत्व का बना रहे (A people would never die if it remained eternally composed of the same national elements') "गोविना" के विचार चाहे हमें स्वीकृत नहीं परन्तु लेखक के परिश्रम तथा विचार शैली पर किसी प्रकार का भी आक्षेप

करना कठिन है। गोविना वक्र के सदृश 'सत्य' को छिपाने वाला न था।

(२) प्रोफ़ेसर पाट (Professor Pott) ने इसी विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। यदि उसे सर्वथा भुला भी दिया जावे तब भी डाकृर वालग्राफ़ (Dr Voll Graff) की पुस्तक को भुलाना सर्वथा कठिन है। डाकृर वालग्राफ ने वक्र की अच्छी तरह से समालोचना की थी तथा जनता को प्रकट कर दिया था कि किस प्रकार महाशय वक्र के सिद्धान्त सत्यता से दूर हैं।

(३) सत्यता के इतिहास पर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक अर्न्स्ट वान लास लूक्स (Arnst Von lasslox) ने भी एक पुस्तक लिखी थी। परन्तु वक्र ने उपरिलिखित विद्वानों में से किसी की भी पुस्तक को न पढ़ा था और यदि पढ़ा भी होगा तो उसने उनका कोई जिक्र न किया क्योंकि उनकी पुस्तकें उसके सिद्धान्तों के अनुकूल न थीं।

इस प्रकरण को छोड़ कर मैं अब वक्र के गणनाशास्त्र के अध्ययन पर एक दृष्टि डालना आवश्यक समझता हूँ। वक्र ने महाशय क्वट् लेन्ट् को युरोप के सब से बड़े गणनाशास्त्र का पद दिया यह इसी लिए कि उसके वाक्यों को उन्हें उद्धृत करना था तथा उसके द्वारा अपनी सम्मति को ही सत्य सम्मिति प्रकट करना था। एक लेख के लिए इस प्रकार के छल को करना कुछ भी उचित नहीं प्रतीत होता है। क्वट् लेट् गणना शैली के प्रसिद्ध संपत्ति शास्त्रज्ञ रोशर सक्त विरुद्ध था। तथा अन्य सम्पति शास्त्रज्ञों

को भी उसकी शैली स्वीकृत न थी। परन्तु बक्ल को इन बातों की क्या परवाह थी। उसको तो अपनी बात सत्य सिद्ध करनी थी। जिसकी सम्मति उसके अनुकूल बैठ गयी वही उसके लिए सब से प्रामाणिक हो गया। महाशय बक्ल अपनी पुस्तक में एक स्थान पर तो लिखते हैं कि वैयक्तिक कार्यों से सामाजिक कार्यों का अनुमान न करना चाहिए तथा अल्प समय की घटना से चिरकाल के लिए नियम न बनाना चाहिए परन्तु स्वयं ही वह इस उपरि लिखित अपने कथन से उलटा चलते हैं। बक्ल का कथन है कि 'आत्मघात के अन्दर भी कोई नियम काम करता है क्योंकि प्रति वर्ष लगभग एक जैसी संख्या ही आत्म घात करती है।.... यदि सामाजिक अवस्था में कुछ वर्षों तक कुछ भी अन्तर न आवे तो नियत संख्या के पुरुष प्रति वर्ष अवश्यमेव आत्मघात करलिया करेंगे............इंगलैन्ड में गेहूं के मूल्य का विवाह के साथ बड़ा घनिष्ट संबन्ध है।

इस विचित्र सिद्धान्त पर बहुत लिखना व्यर्थ है। क्षणिक तथा वैयक्तिक बातों से सर्वभौम नियम नहीं निकाले जा सकते हैं। विचित्रता तो यह है कि बक्ल ऐसा मानते हुए भी अवसर पड़ने पर उससे विपरीत चलने में कभी भी नहीं हिचकते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

परिशिष्ट

(ख)

बक्ल प्रकृति वाद की दृष्टि से सभ्यता की उत्पत्ति के कारण को ढूंढने में अपने द्वितीय परिच्छेद को कार्य में लाया है बक्ल की सारी पुस्तक में द्वितीय परिच्छेद ही अत्यन्त रुचिकर तथा ध्यान से पढ़ने योग्य है। अत: अब हम इसी परिच्छेद की आलोचना करना प्रारंभ करेंगे। क्योंकि लेखक की त्रुटियां तथा अज्ञानता की सीमा पाठकों पर इसी परिच्छेद की आलोचना से स्पष्ट हो जावेगी। हमें शोक से कहना पड़ता है कि बक्ल ने जिस कार्य को अपने हाथ में लिया उसे वह सफलता से समाप्त न कर सका। पाश्चात्य जातियों में से कई एक अन्य विद्वानों ने भी बक्ल के कार्य को अपने हाथ में लिया था और यह हमें प्रसन्नता से कहना पड़ता है कि उन्हों ने बड़ी सफलता से उसे समाप्त किया। उनमें से कुछ एक विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं।

१ **महाशय रिटर** (Ritter :—यह भूगोल विज्ञान का अविष्कर्ता तथा जन्म दाता यूरोप महाद्वीप में समझा जाता है इसने भूगोल पर एक बड़ी भारी पुस्तक लिखी है। कहा जाता है कि ४० वर्ष के लगातार परिश्रम से एक मात्र एशिया का ही भूगोल उसने लिखा था। प्राकृतिक जगत् का मनुष्य के साथ सम्बन्ध प्रकट करने वाले विचारकों में इसको प्रथम

दर्जा आजकल दिया जाता है। इसके अनुगामी आजकल बहुत से विद्वान हैं जिनमें से कुछ एक के नाम ये हैं। (१) रूजमन्ट (Rougemant) (२) मन्डलसान् (Mendelssohn) (३) क्नैप Knapp इत्यादि।

(२) जिस प्रकार रिट्टर ने मनुष्य तथा भूगोल का सम्बन्ध प्रकट किया उसी प्रकार भूगर्भ वेत्ता कोटा (Cotta) ने भूगर्भ तथा मनुष्य की उन्नति का सम्बन्ध प्रकट किया।

(३) वीना नगर निवासी प्रोफेसर अंगर (Unger) ने वनस्पति तथा मनुष्य की उन्नति का सम्बन्ध प्रगट किया यह वनस्पति शास्त्र का बड़ा भारी विद्वान् गिना जाता है।

(४) प्रोफेसर वाल्ज (Volz) ने गृह्य पशुओं तथा वनस्पतिओं का सभ्यता की उन्नति पर जो प्रभाव पड़ता है उसे प्रकट किया है।

परन्तु बक्ल ने उपरिलिखित विद्वानों से किसी एक की भी पुस्तक न पढ़ा। परिणाम इसका यह हुआ कि वह स्थान स्थान पर बीसों गलतियां कर गया जिनमें से कुछ एक का निर्देश स्थाली पुलाक न्याय से मैं यहां पर करदेता हूं।

(क) मिस्रदेश तथा बक्ल

मनुष्य के ऊपर प्राकृतिक तत्वों की प्रधानता के प्रभाव को दिखाते हुए बक्ल ने मिश्र देश तथा भारतवर्ष को दृष्टान्त के तौर पर लिया है तथा उन पर अपने सिद्धान्तों को घटाने का यत्न किया है। बक्ल का मिश्र के विषय में कथन है किः—

"अफ्रीका महाप्रदेश में ऊष्ण जल वायु होने के कारण जहां जन संख्या बढनी चाहिये थी वहां भूमि के अनुपजाऊ

होने से वह न बढ़ सकी। परन्तु नील नदी के तटवर्ती प्रदेशों के साथ यह बात न थी। वहां की भूमि बहुत ही अधिक उपजाऊ थी। जल वायु भी जन संख्या वृद्धि के बहुत कुछ अनुकूल था......इस दशा में वहां की जन संख्या बहुत शीघ्रता से बढ़ती रही।"

वक्ल का मिश्र देश के विषय में उपरिलिखित जो कथन है वह सर्वथा असत्य है। भूगोल शास्त्र के जन्मदाता रिट्टर का कथन है कि "नील नदी के तटवर्ती आदिम निवासी लीबिया तथा अरबियां रेगिस्तान के निवासियों के सदृश ही असभ्य तथा जंगली थे। मिश्र देश पर कुछ एक विदेशियों ने अपने उपनिवेश बसाये। तथा उन्होंने वहां पर धान्य उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। नील नदी की बाढ़ से उन्होंने अपने चातुर्य्य से काम लेना प्रारम्भ किया तथा उसके द्वारा 'धान्य' की उपज को बहुत ही अधिक बढ़ा दिया। परन्तु रोम के अधःपतन के समय मिश्र पर जो अत्याचारी हानिकर शासन हुआ उससे देश की दशा सर्वथा बदल गयी। जनता की शक्ति रोम के कुशासन से नष्ट प्राय हो गयी। जनता की शक्ति के नष्ट होते ही नीलनदी की अत्यन्त उपजाऊ घाटी पुनः पूर्ववत् अनुपजाऊ हो गयी। थीब्ज़ [Thebes] रेगिस्तान हो गया तथा मेरोटिस (mereotis) बड़ा भारी दल दल"।

अब यहाँ पर वक्ल का कहना माना जावे या भूगोल शास्त्र के जन्म दाता रिट्टर का। वक्ल मिश्र में असभ्यों का, नील नदी की तट वर्ती भूमी के उपजाऊ होने के कारण सभ्य हो जाना मानता है परन्तु रिट्टर वक्ल से ऐन उलटा मानता है। रिट्टर की सम्मति में मिश्र को नील नदी की बाढ़ की

सहायता से कुछ सभ्य विदेशियों ने उपजाऊ प्रदेश बनाया। जो कुछ भी हो इस स्थान पर हमें रिट्टर की सम्मति ही सत्य प्रतीत होती है *

वकृतथा भारतवर्ष प्राकृतिक परिस्थिथति का सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रभाव बताते हुए वक्क कहता कि "कैथोलिकल धर्म का भूकम्प के साथ बड़ा भारी घनिष्ट सम्बन्ध है।" वक्क के शब्द यह हैं ॥

"कल्पना का विषय अविज्ञात के साथ सम्बद्ध है। प्रत्येक आवश्यक घटना, जिसकी उत्पत्ति का कुछ भी स्पष्ट कारण का पता न हो, जाति की कल्पना शक्ति को बढ़ाती है...भूकम्प, ज्वालामुखी पर्वत का फटना, यह दोनों इटली पुर्तगाल तथा स्पेन में जाति को बेहद हानियां पहुंचाते हैं। परिणाम इसका यह है कि पाश्चात्य अन्य सभ्य जातियों की अपेक्षा इन्हीं देशों में भ्रमात्मक विश्वासों की अधिक प्रबलता है। यह वही देश है जिनमें कि पादरियों ने शक्ति को खूब पकड़ा तथा ईसाई धर्म को खूब ही बिगाड़ा गया; तथा जहां पर कि भ्रमात्मक का विश्वास चिरकाल तक विद्यमान रहे।"

यदि वक्क के इस उपरिलिखित कथन का सार निकालें तो इस प्रकार निकल सकता है कि "पादरियों की शक्ति का बढ़ने तथा भूकम्प के होने में कार्य कारण भावका सम्बन्ध है। वक्क ने यही एक नया आविष्कार नहीं निकाला है।" उसके अन्य आविष्कार भी इसी प्रकार के चमत्कार से परिपूर्ण हैं।

---

* See J. R, A, S. Vol III. India & Egypt

बक्ल ने प्लेग तथा महामारी से जातियों में भाग्यवाद की उत्पत्ति को प्रकट किया है। बक्ल कहता है कि—

"जिस समय किसी जनता में अज्ञानता प्रबल हो तथा आकस्मिक घटनाओं के कारण उनकी विचार शक्ति सीमा से बाहर हो उस समय उनमें कल्पना के घोड़े उड़ने लगते हैं, और प्रत्येक बात प्राकृतिक कारणों के स्थान पर दैवी कारणों के साथ जोड़ दी जाती है। यूरोप में भी भारत के सदृश ही प्रत्येक प्रकार का भयानक रोग "दैव" का कोप ही समझा जाता है। और यह इसी लिए कि उन रोगों का कारण जनता को अभी तक उचित रीति पर पता नहीं है" यही नहीं। इसी कल्पना तथा सिद्धान्त को आगे बढ़ाता हुआ बक्ल कहता है कि "यूरोप की प्राकृतिक परिस्थिति इतनी कठोर तथा भयप्रद नहीं है अतः वहां के निवासियों में भारत पीरू मिश्र आदि देशों की अपेक्षा आत्म विश्वास अधिक है" और यह कहकर वह कहता है कि—

"भयप्रद प्राकृतिक परिस्थिति का किसी देश के साहित्य धर्म तथा शिल्प पर क्या प्रभाव पड़ता है यह हम भारत तथा यूनान के इतिहास से स्पष्ट करेंगे। भारतवर्ष तथा यूनान का मुकाबला बक्ल महाशय इस प्रकार करते हैं।

"भारत तथा यूनान की मूर्त्ति पूजा में आधार भूत कुछ और ही सिद्धान्त काम कर रहे हैं। यूनान वालों ने मनुष्यों तथा देवताओं के बीच में अन्तर घटाने का जहां यत्न किया है वहां भारतीयों ने उस अन्तर को अधिक अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया है। यूनान वालों की मूर्त्ति पूजा में जहां विश्वास काम कर रहा है वहां भारतियों की मूर्त्ति पूजा में अवि-

श्वास। अर्थात् जहाँ यूनानी अपने आपको अपने देवताओं के सदृश बनाने में आत्मविश्वास रखते हैं वहाँ भारतीय ऐसा नहीं। क्योंकि भारतीयों ने अपने देवताओं को वह रूप दिया है जिसे कि वह स्वयं प्राप्त कर सकने में अशक्त हैं। इस प्रकार की अवस्था भारतियों की ही एक मात्र नहीं है अपितु पीरू, मैक्सिको आदि सभी ऊष्ण प्रदेशों के लोगों में यह बात पायी जाती है।"

बक्ल ने इस स्थान पर जो अज्ञानता दिखायी है उस पर हमें आश्चर्य हो जाता है। एक अन्य योग्य विद्वान् का कथन है कि इस स्थल पर बक्ल ने जो अपनी तर्कना तथा अज्ञानता का शोकप्रद परिचय दिया है ऐसा अभी तक किसी भी लेखक ने नहीं दिया है। यह क्यों? यह इसी लिए चूंकि बक्ल के हृदय में यह बैठा हुआ था कि यूरोपियन लोग एशिया वालों से बहुत ही उच्च हैं तथा बक्ल ने भारतवर्ष का कोई अच्छा विस्तृत इतिहास भी न पढ़ा था। बक्ल ने भारत के जिन देवी देवताओं का वर्णन किया है, भारतवर्ष में पौराणिक काल के अन्दर उनकी उपासना की जाती थी। वैदिक काल में देवी देवताओं की इस रूप में उपासना न प्रचलित थी और न वेदों से लेकर उपनिषदों तक किसी ग्रन्थ में ऐसे देवताओं का वर्णन ही मिलता है। बक्ल ने

(II) Perhaps no writer of pretension ever made a more disgraceful exhibition of ignorance & unreason than Mr. Buckle in these passages. (Sec. Lord Action. Historical Essays & studies. Vol II. page 337.

सभ्यता की उत्पत्ति को दिखाते हुए भारत या अन्य देशों की जहां पर भी आलोचना की है वहां पर उन्होंने बहुत सी आवश्यक बातों का ध्यान नहीं रखा है। किसी देश का इतिहास केवल एक विशेष काल का इतिहास नहीं होता है। देशों की भिन्न भिन्न समय में भिन्न २ सभ्यता होती है। भारत में वैदिक कालकी जो सभ्यता थी वह महाभारत रामायण काल से सर्वथा भिन्न थी और इन कालों की पौराणिक काल से सभ्यता सर्वथा न मिलती थी। भारत के इतिहास में मोटे मोटे काल क्रमशः निम्न लिखित कहे जा सकते हैं।

(१) वैदिक काल
(२) ब्राह्मण काल
(३) उपनिषत् काल
(४) सूत्र काल
(५) बौद्ध काल
(६) पौराणिक काल
(७) मुसल्मानी काल
(८) अंग्ल काल

वक्ल ने आदिम अवस्था में क्रूर प्राकृतिक परिस्थिति का क्या परिणाम होता है इस बात को दिखाने के लिये भारतवर्ष का इतिहास लिया। जो कुछ उन्हें भारत के इतिहास से सिद्ध करना था उसके लिये उन्हें भारत के इतिहास के वैदिक काल के द्वारा ही सिद्ध करना चाहिये था क्योंकि आर्य्य जाति की आरम्भिक सभ्यता के इतिहास का उन्हीं पुस्तकों से पता लगाया जा सकता है। परन्तु उन्होंने इस स्थान पर पाठकों को पूरा धोका दिया। पौराणिक काल में प्रचलित

महादेव तथा काली के गुणों को दिखाकर उन्होंने अपने कथन को बड़ी सफलता से सिद्ध कर दिया। जो कुछ उन्हें चाहिये था वह यह था कि जिस प्राचीन काल के सभ्यता के इतिहास के विषय में वह लिख रहे हैं उसी समय के अन्य देशों के इतिहास से दृष्टान्त देते। यदि वह ऐसा करते तो उन्हें इतनी गलतियां न करनी पड़तीं। वैदिक काल में इस प्रकार के देवी देवताओं का कोई भी वर्णन नहीं मिलता है।

भारत के देवी देवताओं की भयानक मूर्ति द्वारा वक्लने यह प्रगट किया कि भारतियों में आत्मविश्वास नहीं है। क्योंकि उन्होंने अपनी देवी देवताओं को वह भयानक तथा विचित्र रूप दिया जिस को कि वह स्वयं प्राप्त करने में सर्वथा ही असमर्थ हैं। साथ ही वक्ल ने इससे यह भी सिद्ध किया कि भारतवर्ष में मनुष्य प्रकृति के नीचे हैं तथा भारतीयों को यह विश्वास ही नहीं हो सकता है कि वह कभी प्रकृति को वश में कर भी सकते हैं। परन्तु अब मैं एक दूसरे दृष्टान्त द्वारा वक्ल के ऐन विपरीत सिद्ध करूंगा तथा साथ ही यह भी दिखाऊंगा कि किस प्रकार वक्ल की विचार शैली दूषण तथा छल से परिपूर्ण है।

वक्ल के ढंगपर विचार करते हुए मैं यह कहने के लिये तैयार हूँ कि भारतवासियों ने प्रकृति को अपने ऊपर कभी भी नहीं समझा। भारतवर्षी प्रकृति को सदा से ही दृष्प समझते रहे हैं। भारत में यह विश्वास है कि संसार में ७ मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर पर एक एक मनु का राज्य रहता है मनु ही सृष्टि के बनाने तथा नष्ट करने वाले होते हैं। उत्पति प्रलय करना उन्ही का कार्य है। मनुस्मृति में आता

है कि परमात्मा ने पहिले पहिल मनुको उत्पन्न किया। मनु ने निम्न लिखित दश ऋषियों को।

(१) मरीचि (२) अत्रि (३) अङ्गिरस (४) पुलस्त्य (५) पुलह (६) क्रतु (७) प्रचेतस (८) वसिष्ठ (९) भृगु (१०) नारद

इन ऋषियों ने जहां सारे संसार को उत्पन्न किया वहां उन्होंने सात मनुष्यों को भी उत्पन्न किया जिनके नाम यह हैं।

(१) स्वारोचिष (२) उत्तम (३) तामस (४) रैवत (५) चाक्षुष (६) महतिज (७) वैवस्वत यह सातों ही मनु अपने अपने समय में सारे संसार को उत्पन्न करते हैं तथा संसार का पालन करते हैं।

इस उपरिलिखित मनुस्मृति के वाक्यों के अनुसार तो यही सिद्ध होता है कि भारतियों जैसे आत्मविश्वासी पुरुष तो संसार में शायत् ही कहीं पर हों। क्योंकि यूनान वालों में तो इतना ही आत्मविश्वास है कि वह अपने आपको अपने देवताओं के सदृश बना सकते हैं परन्तु भारतियों में

---

१) तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषोविराट्।
तं मां वित्तास्यसर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः॥ मनुः अ० १ श्लोक ३३
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितोदश॥ श्लोक ३४
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥ श्लोक ३५
एते मनूंस्तु सप्तान्यान्सृजन्भूरितेजसः।
देवान्देवनिकायांश्च ब्रह्मर्षींश्चामितौजसः॥ श्लोक ३६
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च॥ श्लोक ६२
स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवोभूरितेजसः।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम्॥ श्लोक ६३

तो आत्मविश्वास की पराकाष्ठा पहुँच गयी है। वह तो अपने आपको ही सारे संसार के उत्पात प्रलय करने वाला मानता है। पौराणिक साहित्य के अध्येताओं को तथा संस्कृत के संपूर्ण साहित्य का अनुशीलन करने वालों से यह छिपा नहीं है कि किस प्रकार प्राचीन भारतवर्षी स्वर्ग का राज प्राप्त करने का यत्न करते थे तथा किस प्रकार स्वर्ग राजा इन्द्र भारतियों से डरा करता था। रावण ने किस प्रकार स्वर्ग के देवताओं को अपने आधीन किया था उसका वर्णन एक काव्य में इस प्रकार आता है।

"रावण ने स्वर्ग की वाटिका से मँदार आदि पेड़ों को उखाड़ कर लङ्का में अपने बाग़ के अन्दर लगाया। उन पेड़ों को वह पानी देवताओं की स्त्रियों द्वारा दिलवाता है। चांद सूर्य अग्नि रावण के डर के मारे उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलने का साहस नहीं कर सकते हैं। वायु भी उसी की आज्ञा के अनुसार गति करता है" (१)

"भारतीय राजाओं का देवताओं को सहायता देना" संस्कृत साहित्य में स्थान स्थान पर वर्णित है। दुष्यन्त, दशरथ, आदि का देवताओं की सहायता के लिये स्वर्ग में गमन, त्रिशंकु की सशरीर स्वर्ग में प्रवेश करने का यत्न, विश्वामित्र का नवीन सृष्टि की रचना आदि आदि कथानक यदि किसी जाति के अनात्मविश्वासता को सूचित करते हैं तो आत्मविश्वास को सूचित करने वाली और कौन सी घटना हो सकती है। यदि किस्से कहानियों से ही किसी जाति के स्वभाव का पता लगाया जा सकता है तो मैं यह कहूँगा कि

(१) चम्पू रामायणम् । २२ पृष्ठ

आर्यों जैसी आत्मविश्वासिनी जाति संसार में अभी तक कोई भी नहीं हुई है। सारे पुराण केवल एक ही बात को दिखाते हैं कि किस प्रकार आर्यों ने स्वर्ग को जीतने का यत्न किया और किस प्रकार इन्द्र ने अपने आपको धोखे बाज़ी से बचाने का यत्न किया"। विचित्रता यह है कि भारतीय प्राचीन राजाओं का तो जीवन का उद्देश्य ही यही होता था कि वह अश्वमेध यज्ञ कर इन्द्र को नीचा दिखावें।

परन्तु बक्ल को इन बातों से क्या मतलब उन्हें तो एशिया की अपेक्षा योरुप को उत्तम ही प्रगट करना है। और जब कोई लेखक ऐसा करने का इरादा ही कर लेवे तो उसे कौन रोक सकता है।

महाशय बक्ल का कथन है कि "भारत में शासक जाति का शासितों पर अत्याचार आरम्भ से ही चला आया है और भारतियों ने शासकों के विरुद्ध उठने का कभी भी यत्न नहीं किया है"। परन्तु बक्ल का यह कथन साफ़ झूठ है। अद्यकालीन एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि "भारत में' चीन, मिश्र, बैबलोनियां तथा चीनी तातीर में जो स्वेच्छ चारित्व राज्य होता रहा है वह भारत में कभी भी न हुआ था यदि कभी हुआ भी होगा तो वह चिरकाल तक न रहा होगा" (१)

(१) Among the aryan peoples there has never arisen that despotions which blots out man in Egypt Babylen, china & among the musocilman & faster tribes or if it has appeared it has not been of long dunation (See miraglia, " comperative Legal philosophy,

भारत की प्राचीन काल में क्या अवस्था थी इस बात को मैंने अपनी "चन्द्र गुप्त मौर्य के काल में शासन पद्धति" नामी पुस्तक में सविस्तार प्रगट किया है। अतः इस विषय को यहीं पर छोड़ देता हूँ।

'बकल को देवता पूजा' जो भाव था वह उन्हों ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट नहीं किया है। मूर्ति पूजा एक दूसरी चीज़ है देवता पूजा (Hero-worship) एक दूसरी चीज़। बकल ने यूनान तथा भारत का मुकाबला करते समय जो चालाकी की वह यह कि भारत की मूर्ति पूजा की यूनान की देवता पूजा' (Hero—worship) के साथ तुलना कर दी। उचित तो यह था कि दोनों ही देशों की देवता पूजा' की तुलना द्वारा परिणाम निकालते। भारत वर्ष में रामचन्द्र युधिष्ठिर आदि को वही रूप दिया हुआ है जो कि यूनानियों ने अपने देवताओं को। यूनानियों का 'कामदेव' 'भारतीयों के' काम देव से सर्वथा अभिन्न है। प्रसिद्ध विद्वान् सर विलियम् जोन्सने यूनानी इटली तथा भारत वर्ष की देवपूजा की जो तुलना की है उससे पता लगता है।

कि देव पूजा में तीनों ही देशों के अन्दर बड़ी भारी समानता है। उन्हों ने निम्न लिखित इटैलियन तथा यूनानी देवताओं की निम्नलिखित भारतीय देवताओं के साथ तुलना की है।

भारतवर्षी		इटैलियन तथा (यूनानी)
गणेश	=	जेनस
श्री (लक्ष्मी)	=	सिरी (ceres)
सरस्वती	=	मिनर्वा

द्युर पिता = जू—पिटर (Ju piter)
पार्वती = आलिम्यन जूनो।
भवानी = जूनो सिप्तिपा
इत्यादि इत्यादि

परन्तु बक्ल को इन सचाइयों की कुछ भी परवाह नहीं है। उन्हें तो अपनी बात सिद्ध करनी हैं। उसके लिये किसी घटना के तह तक पहुँचने की उन्हें क्या आवश्यकता है ! मिश्र देश के विषय में किस प्रकार बक्ल ने झूठ लिखा है यह मैं रिट्टर के कथन से पूर्व ही सिद्ध कर चुका हूँ।

वक्ल तथा संपत्ति शास्त्र — बक्ल ने अपने 'सभ्यता के इतिहास' के लिखने में संपत्ति शास्त्र के सिद्धान्तों को स्थान स्थान पर लगाया है भृति व्याज तथा लाभ की उत्पत्ति में बक्ल ने प्राचीन संपत्तिशास्त्र के 'भृतिकोस सिद्धान्त' (wage fund theory) तथा माल्थूस के जन संख्या सिद्धान्त (theory of population) को प्रयुक्त किया है। परन्तु यह दोनों ही सिद्धान्त आजकल उतने मान्य की दृष्टि से नहीं देखे जाते हैं जितने पहिले। भृतिकोस सिद्धान्त को तो अब कोई पूछता भी नहीं है। क्यों कि इसकी असत्यता सब विद्वानों पर प्रत्यक्ष हो चुकी है १। इसका परिणाम यह हो गया है कि

इटली यथा यूनान की देवता पूजा प्रायः एक सी ही है तथा कई एक देवता भी एक ही हैं। सरविलियम जोन्हज का "इटली तथा भारत वर्ष" पर जो लेख है वह पढ़ने योग्य है।

(J. R. A. S. Vol III)

(१) भृतिकोस सिद्धान्त तथा जन संख्या सिद्धान्त पर यहां कुछ भी लिखना मैं उचित नहीं समझता। हूं क्योंकि वह विषय अत्यन्त कठिन है

वक्क ने धनविभाग के कारणों पर जो कुछ लिखा है वह सब का सब अप्रमाणिक है, वक्क के कुछ समय बाद प्रसिद्ध समष्टि वादी कार्लमार्क्स ने भी (धन विभाग) के प्रश्नो को अपने हाथ में लिया तथा बड़ी बुद्धिमता से उसको सरल किया। इसी प्रकार वक्क ने स्वतन्त्र व्यापार को जातीय उन्नति का एक बड़ा भारी चिन्ह प्रगट किया है। परन्तु आज कल की सभ्य जातियां इस 'उन्नति चिन्ह, से कोसों दूर भागती हैं। यह क्यों ? । क्योंकि 'स्वतन्त्र व्यापार, उन्हीं देशों के लिये उत्तम होता है जिनका व्यापार व्यवसाय खूब चढ़ा बढ़ा हो। कमज़ोर जातियों के लिये तो स्वतन्त्र व्यापार विषका काम करता हैं। जो कुछ भो। इन आर्थिक प्रश्नों पर मैं किसी अन्य स्थान पर स्वयं ही सविस्तर विचार करूंगा अतः यहां पर इसे सवथा ही छोड़ देता हूँ।

है। मैंने अपने संपत्ति शास्त्र में ही इस पर सविस्तर लिखा है। आशा है कि पाठक लोग वहीं से देखेलेंगे।

(१) देखो लेखक का "सभ्यता के इतिहास पर दार्शनिक विचार'

(२) देखो लेखक का "(संम्पत्ति शास्त्र)"

तृतीय परिच्छेद

परिशिष्ट (ग)

आचार तथा विचार का सभ्यता की उत्पत्ति पर प्रभाव

महाशय बक्ल ने आचार तथा विचार का सभ्यता पर प्रभाव दिखाते हुए निम्न लिखित सिद्धान्त प्रगट किये हैं।

(१) सदाचार का कर्त्तव्य कर्म के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। सदाचार के सिद्धान्त निश्चित तथा स्थिर होते हैं। स्थिर का प्रभाव स्थिर होना चाहिये। किसी समाज की सभ्यतायें यदि इन स्थिर सिद्धान्तों की मुख्यता हो तो उसकी सभ्यता स्थिर होनी चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं है। सभ्यता में दिन पर दिन परिवर्तन होता रहता है। और यह परिवर्तन विचार सम्बन्धी बातों के कारण ही हो सकता है न कि सदाचार सम्बन्धी बातों के कारण।

(क) विचार की उन्नति से योरुप में (I) धार्मिक घात तथा (II) युद्ध बन्द हो गये हैं। सदाचार के सिद्धान्त इन दोनों घटनाओं को योरुप में न उत्पन्न कर सके।

(२) बक्ल की सम्मति में 'सभ्यता' की उन्नति के एक मात्र तीन ही कारण हैं।

(I) जनता के योग्य मनुष्यों की विद्या।

(II) भिन्न २ वैज्ञानिक विषय।

(III) जनता में विद्या का प्रचार।

महाशय बक्ल के ऊपरि लिखित सिद्धान्त के खण्डन करने

से पूर्व में निम्न लिखित बातों पर प्रकाश डालने का यत्न करूंगा।

(I) मनुष्य का उद्देश्य तथा कार्यक्रम

(II) राष्ट्र

(III) राष्ट्र का उद्देश्य

(IV) राष्ट्र का उद्देश्य तथा वक्ल का सिद्धान्त

I

मनुष्य का उद्देश्य तथा कार्यक्रम

मनुष्य में आत्मा, मन, शरीर इन तीनों की मुख्यता है। मनुष्य की उन्नति के लिये तीनों अङ्गो की उन्नति आवश्यक है। अर्थात् आत्मिक, मानसिक, शारीरिक,। इन तीनों प्रकार की उन्नति के लिये मनुष्य को भिन्न भिन्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है। आत्मक उन्नति जहां सदाचार से तथा मानसिक उन्नति विचार से वहां शारीरिक उन्नति स्वास्थ संपन्न स्थान में निवास से तथा भोजन आदि से होती है। 'आत्मा, मन, शरीर, इन तीनों में यदि किसी में विक्षोभ हो जावे तो उसका विक्षोभ सब पर प्रभाव डालता है। मानसिक चिन्तायें जहां स्वास्थ पर प्रभाव डालती हैं वहां स्वास्थ मनोवृति पर तथा यह दोनों ही आत्मा पर अपना २ प्रभाव डालते हैं। परन्तु प्रश्न जो कुछ यहां पर उठता है, वह यह है कि 'उन्नति क्या चीज़ है?। इस का उत्तर कुछ सहज नहीं है। क्योंकि 'उन्नति' समिद्तिक चीज़ है। इसकी सीमा को निर्दिष्ट करना कठिन है। परन्तु इतना अवश्यमेव कहा जा सकता है कि "अमुक प्रकार की मनुष्य की गति" को हम

उन्नति कहते हैं और अमुक प्रकार की गति को हम अवन्नति कहते हैं। पर पूर्व ही दिखाया जा चुका है कि आत्मिक उन्नति का सदाचार के साथ, मानसिक उन्नति का विचार के साथ तथा शरीरिक उन्नति का स्वास्थ के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। इनकी ओर जाना मनुष्य का उन्नति करना है और इससे विपरीत जाना अवन्नति करना है। परन्तु कार्य का उद्देश्य के साथ जो घनिष्ट सम्बन्ध है वह किसी से छिपा नहीं है। यह किसी ने ठीक कहा है। कि "मनुष्य को पहिचानना है, तो उसके उद्देश्य को जाने"। क्योंकि मनुष्य अपने उद्देश्य के अनुसार ही कार्य करता है। मनुष्य का क्या उद्देश्य होना चाहिये यह ऊपरिलिखित कथन से स्पष्ट ही होगया होगा 'सदाचार, विचार, स्वास्थ, इन तीनों की ही उन्नति करना मनुष्य का उद्देश्य होना चाहिये। महाशय बक्ल सदाचार के सिद्धान्तों को स्थिर तथा निश्चित समझते हैं। परन्तु यदि उन्होंने आचार शास्त्र का गम्भीरता से अध्ययन किया होता तो वह कभी भी ऐसा न कहते। सदाचार के प्रश्न पर भी जब गम्भीर विचार किया जावे तो उसमें भी मनुष्य को अपनी उसी अल्प शक्ति का अनुभव होने लगता है जैसा कि अन्य विषयों में। परन्तु स्थूल तौर पर सदाचार के भाव को हम यहां पर दिखा देते हैं। सदाचार से हमारा अभिप्राय प्रेम भ्रातृभाव, नियम पालन, अहिंसा, परोपकारादि गुणों से है। सारांश यह है कि मनुष्य को अपनी उन्नति के लिये अपने जीवन के निम्न लिखित उद्देश्य बनाने चाहियें।

(I) परोपकार (सदाचार के सिद्धान्तों पर चलना)

(II) विचार की उन्नति।

(III) शारीरिक स्वास्थ की उन्नति।

उद्देश्य का कार्य क्रम के साथ जो घनिष्ट सम्बन्ध है वह अत्यन्त स्पष्ट है बिना उद्देश्य के किसी ओर जाना कठिन हो जाता है। मनुष्य का जैसा उद्देश्य होता है यह वैसा ही कार्य करता है। यदि किसी का उद्देश्य दूसरों को हानि पहुंचा कर अपनी वृद्धि करना हो। उस दशा में दूसरों को भी अपने आप को बचाने के लिये सन्नद्ध होना पड़ जाता है। इस का परिणाम युद्ध स्वाभाविक ही है। अतः यह कहना कितना हास्यप्रद हो जाता है कि ' सदाचार के सिद्धान्त स्थिर होते हैं" अतः उनके कारण विश्राम नहीं हो सकता है। संपूर्ण जातियों के राज्य इस बात को प्रगट कर रहे हैं कि किसी प्रकार 'स्थिर नियमों' का प्रभाव भी विश्राम हो सकता है। यदि एक व्यक्ति अपना उद्देश्य चोरी करनो ही बना लेवे तो क्या उसका समाज पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता है। वक्ल महाशय यहां पर कुछ फिसलते हैं तथा कहते हैं कि "व्यक्तियों में या तो सदाचार के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ता है परन्तु राष्ट्र पर ऐसा नहीं होता है" यह क्यों ? . इसका वक्ल महाशय उत्तर देते हैं कि सदाचार सम्बन्धी विचारों से मनुष्य प्रायः चलाया जाता है परन्तु राष्ट्र नहीं। इसी लिये कि राष्ट्र के अङ्ग, भूत व्यक्तियों के परस्पर विरोध सदाचार सम्बन्धी एक दूसरे से कर जाते हैं तथा अन्त में उनका प्रभाव राष्ट्र पर कुछ भी नहीं रहता है। क्योंकि राष्ट्र में अच्छे बुरे दोनों ही प्रकार के मनुष्य होते हैं। राष्ट्र उन दोनों विरोधी आचार वालों से मिल कर बना होता है। अतः राष्ट्र पर वैयक्तिक

आचार का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता है। क्योंकि जहां कुछ मनुष्यों में प्रेम होता है वहां कुछ मनुष्यों में द्वेष। प्रेम तथा द्वेष मिल कर शून्य हो जाते हैं तथा राष्ट्र पर अपना कुछ भी प्रभाव नहीं छोड़ते हैं।"

क्या ही अच्छा तर्क है? शायत् वक्ल महाशय ने किसी राष्ट्र का इतिहास पढ़ा होगा जिसमें आधे मनुष्य चोरी करते होंगे तथा आधे मनुष्य ही 'दान'। यदि वक्ल महाशय के तर्क को हम "विद्या तथा विचार" पर भी लगावें तो उससे भी तो सभ्यता की उन्नति कैसे हो सकती है। 'क्या सदाचार' के लिये ही राष्ट्रों ने प्रण कर लिया है उनके आधे मनुष्य पाप करेंगे तथा आधे पुण्य। क्या 'विचार' के लिये मनुष्य विभक्त नहीं हो सकते हैं कि "राष्ट्र के आधे मनुष्य मूढ़ ही रहे थे तथा आधे मनुष्य विद्वान्"। यदि सदाचार के सदृश ही 'विचार' में भी कल्पना कर लिया जावे तो उसका भी सभ्यता की उत्पति पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ सकता है। यदि वक्ल महाशय यहां पर कहें कि "नहीं, सदाचार के ही प्रश्न पर राष्ट्र के आधे आधे व्यक्ति विभक्त हो जाया करते हैं 'विचार' के प्रश्न पर नहीं। यहां पर इसके सिवाय हम क्या कह सकते हैं कि शायत् वक्ल महाशय के साथ राष्ट्रीय जनों का बड़ा प्रेम होगा जिससे वक्ल के सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करने के लिये उनमें से आधे तो पापी हो जाते हैं तथा आधे पुण्यात्मा परन्तु विचार के प्रश्न पर उनमें से अधिक विचारवान् हो जाते हैं तथा मूढ़ थोड़े से ही। जिससे सभ्यता की उत्पत्ति में वक्ल महाशय का 'विचार' तो कारण बना रहे परन्तु 'सदाचार' नहीं।

'विचार' को सभ्यता की उत्पत्ति में कारण बनाते हुए महाशय बक्ल एक बड़ी भारी भविष्यद्वाणी करते हैं कि "अब योरुप में युद्ध" नहीं हो सकते हैं। 'युद्ध' हो सकते हैं यह तो मुझे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है हाथ कंगन को आरसी क्या ?। परन्तु मुझे जो कुछ कहना है वह यही है कि किस अज्ञानता से महाशय बक्ल ने गल्ती खायी। बक्ल को राष्ट्र का ज्ञान पूरी तौर पर न था। राष्ट्र भी मनुष्य के सदृश एक शरीर है अतः उसको भी सदाचार के सिद्धान्त बहुत कुछ चलाते हैं। यदि मनुष्यों में स्वार्थ के कारण कलह होता है तो राष्ट्रों में ऐसा होवे तो उसपर आश्चर्य ही क्या करना। इसी विषय को स्पष्ट कर के उद्देश्य से अब मैं दूसरा प्रकरण आरम्भ करता हूं।

II

राष्ट्र

राष्ट्र मनुष्य के सदृश ही एक शरीर है। राज्य संघटन, नियम, न्यायालय, सब प्रकार के पदाधिकारी तथा संस्थाएं, सेना आदि यह सब मिल कर राष्ट्र के शरीर को बनाते हैं। इसी में राष्ट्र का आत्मा तथा मन रहता है। राष्ट्र की उन्नति तथा अवन्नति सदा होती रहती है। परन्तु किसी नियम से इसका बताना कठिन है। चाहे इसका कारण हम लोगों की अज्ञानता हो और चाहे इसका कारण यह हो कि यह स्वयं किसी नियम से न हो। राष्ट्र की भी अपनी आयु होती है। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक की सब दशाओं में से राष्ट्र का गुजरना ज़रूरी है। राष्ट्र की आयु अधिकता तथा न्यूनता उसके शरीर की स्वस्थता, परिस्थिति या

अन्य राष्ट्रों से किस प्रकार का सम्बन्ध है इस पर आश्रित है। राष्ट्र के जीवन की रक्षा के लिये उसके प्रत्येक अङ्ग को अपने आप को बलि कर देना ज़रूरी है। अन्यथा राष्ट्र के परतन्त्र हो जाने पर या मृत होने पर अन्य अङ्गों की हस्ती का लुप्त हो जाना स्वभाविक ही है। यही कारण है कि समय २ पर महान् पुरुष राष्ट्र के जीवन तथा अधिकारों की रक्षा के लिये अपने आप को तथा अपनी संपत्ति को स्वाहा करते रहे हैं। राष्ट्र की प्रसिद्धियों में जातियां अपनी प्रसिद्धि समझती हैं, राष्ट्र की भलाई में ही जातियां अपनी भलाई गिनती हैं। जब कभी राष्ट्र पर विपत्ति पड़ती है जाति के प्रत्येक व्यक्ति का हृदय शोक से व्याकुल हो जाता है। प्रत्येक अङ्ग अपने आप को भुला कर राष्ट्र को विपत्ति से बचाने के लिये आग में कूदने तक को सन्नद्ध हो जाता है। राष्ट्रों में भी नर नारी दो भेद हैं। जिस समय राष्ट्र मं कोमलता, नाज़ुकपना, तथा स्त्रीत्व के चिन्ह झलकने लगते है उस समय वह राष्ट्र नर विभाग में नहीं गिना जाता है। यह बात चर्च या किसी अन्य धार्मिक संस्था की प्रधानता में या स्त्रियों को वोट के अधिकार को दे देने से हो जाती है। परन्तु जिस समय राष्ट्र कठोर सहिष्णु-स्वभाव का हो, कठिन सी कठिन विपत्ति का सामना करने में सन्नद्ध हो उस समय वह राष्ट्र नर गिना जाता है। शरीर मन तथा, आत्मा का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। शरीर की स्वच्छता तथा स्वस्थता पर ही मन तथा आत्मा का स्वच्छ तथा स्वस्थ होना आवश्यक है। इसी प्रकार मन तथा; आत्मा की प्रबलता का भी शरीर पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। बहुत सारी शारीरिक आधि व्याधि मन तथा

आत्मा की प्रबलता से दूर की जा सकती है। यही बात राष्ट्र के साथ है। जाति तथा शासकों की स्वस्थता राष्ट्र के मन तथा आत्मा को अतिशय प्रभावित करती है। इसी प्रकार उच्चमानसिक तथा आत्मिक शक्ति वाले राष्ट्र अपने अङ्गभूत जाति के प्रत्येक सभ्यों को पूर्णतम तथा श्रेयातम सीमा तक पहुंचाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यही नहीं। यदि ऐसे राष्ट्रों में सहानुभूति तथा धार्मिक भाव प्रबलता को प्राप्त हो जावें तो अन्य समीपवर्ती राष्ट्रों की उन्नति में बड़ी सहायता करते हैं तथा उनके दुर्गुणों का दूर कर उन्हें एक स्वस्थ दशा में ले आते हैं। वस्तुतस्तु यह प्रत्येक राष्ट्र का कर्त्तव्य ही है। कर्तव्य का ज्ञान बिना आदर्श उद्देश्य के पता लगाये कठिन है। (१) (See, Bluntschl the the ory of the State chap. I-III

राष्ट्र का उद्देश्य

राष्ट्र का क्या उद्देश्य होना चाहिये इस पर बड़ा भारी विवाद है। कई आचार्य 'स्वयं सञ्जीवन का व्यतीत करना ही राष्ट्र का उच्च से उच्च उद्देश्य बताते हैं" परन्तु यह अत्यन्त संकुचित तथा स्वार्थमय होने से हेय है। आदर्श उद्देश्य सञ्जीवन व्यतीत करने से कुछ उच्चतम होना चाहिये। सञ्जीवन व्यतीत करना उस उच्च उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होना चाहिये न कि स्वयं उद्देश्य। दो शताब्दि पूर्व जोन्ह लाक्

---

*(१) टिप्पणि राष्ट्र तथा राष्ट्र का उद्देश्य यह दोनों ही लेखक के राष्ट्र शास्त्र, से उद्धृत हैं। उसी पुस्तकमें पाठकों को इस पर विस्तृत विचार देखना चाहिये।

(Lock) ने राष्ट्र का आदर्श उद्देश्य "मनुष्य मात्र का हित करना" बताया था। इस उद्देश्य पर प्रोफेसर हक्सले ने कहा था कि राष्ट्र का उत्तमोत्तम तथा संक्षिप्त शब्दों में वर्णित उद्देश्य जहां तक मैं समझता हूँ यही है। परन्तु महाशय ब्लन्ट्शी की सम्मति में राष्ट्र का अन्तिम उद्देश्य "जातीय शक्ति तथा जातीय जीवन को पूर्णता तक पहुँचाना है। ब्लन्ट्शी के इस कथन को कारलाइल अति घृणा की दृष्टि से देखाता था। क्योंकि इसी सिद्धान्त की वृद्धि का परिणाम "स्वार्थ" है। महाशय केन्ली का विचार है कि ब्लन्टशी द्वारा निर्दिष्ट उद्देश्य कुछ भी बुरा नहीं रहता है यदि उसके साथ 'सार्वभौम भ्रातृ भाव' के उद्देश्य को भी साथ ही जोड़ दिया जावे तथा भुलाया न जावे।२,

जातीय शक्ति तथा जातीय जीवन की उन्नति से ब्लन्टशी

1. The terms end of state is 'the development of the national capacities, the perfecting of the national life and finally its comptetion".

(See Bluntschte the theory of the state P. 300)

2. The end of the state ought to be the development of the group, not so much as a selfish and self-sufficingnation, with all the narrow and prejudice of unesely national aims, but rather as a branch of the wider while of humanity—a past "of the brotherhood of man".

(See. MeKechnie : The state and the Individual Page 88).

महाशय का जो भाव है उसको वह इस प्रकार प्रगट करते हैं।

(१) संसार में सब से बड़ी शक्ति (World power) बनाना।

(२) जाति के आर्थिकहितों की उन्नति करना।

(३) जाति की 'विचार तथा बुद्धि सम्बन्धी शक्ति को बढ़ाना।

(४) राष्ट्रीय शरीर के अंगों की एकता को स्थिर रखना।

यदि हम उपरिलिखित राष्ट्रशास्त्र नेताओं के 'राष्ट्रीय उद्देश्य' सम्बन्धी विचारों को एकत्रित करें तो वह इस प्रकार होते हैं।

(१) (i) सज्जीवन को व्यतीत करना।
(ii) परोपकार
(२) (i) जातीय मानसिक शक्ति का उन्नत करना
(ii) जाति की 'विचार तथा बुद्धि, सम्बन्धी शक्ति को बढ़ाना।
(३) (i) राष्ट्रीय शरीर के अंगों की एकता को स्थिर रखना।

इन सब उद्देश्यों के मिलाने से प्रतीत हुआ कि राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य अपनी ' आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक, उन्नति को करना होना चाहिये। किसी एक की ही उन्नति से काम नहीं चल सकता है।

IV

राष्ट्र का उद्देश्य तथा बक्ल का सिद्धान्त

महाशय बक्ल का कथन है कि योरुप में तीन बातों के

कारण युद्ध की ओर झुकाव दिन पर दिन कम हो रहा है।

(१) बारूद के आविष्कार मे:—बक्ल कहता है कि बारूद तथा बन्दूक आदि के निकल आने से खर्चा बढ़ गया है। इससे अब प्रत्येक मनुष्य सैनिक नहीं हो सक्ता है। यही कारण है कि अब योरुपियन राष्ट्रों में बाधित तौर पर राष्ट्र के व्यक्तियों को सैनिक नहीं होना पड़ता है।

(२) संपत्ति शास्त्र के आविष्कार से:—बक्ल महाशय की सम्मति में आदमस्मिथ की जातीय संपत्ति (Wealth of Nations) नामी पुस्तक के निकल आने से योरूपियन राष्ट्रों 'में व्यवसायिक तथा व्यापारिक' जोश ने एक नया रूप धारण कर लिया है। राष्ट्र 'युद्ध' का परित्याग 'शास्त्रमय साधनों से अपनी समीद्ध को बढाने पर लग पड़े हैं। धर्म के सदृश व्यापार व्यवसाय में भी राष्ट्र ने अपने हाथ देना छोड़ दिया है। परिणाम इसका यह हो गया है अब राष्ट्रों की युद्ध की ओर प्रवृति बहुत ही कम हो गयी है।

(३) यानों के सुगम होने से:—भाफ द्वारा जहाज़ों के चलने से प्रत्येक देश एक दूसरे से बहुत कुछ पास हो गये हैं। आवागमन वेहद बढ़ गया है। फ्रञ्च आंग्लों के गुणों को जान गये हैं और आंग्ल फ्रेञ्च जनता के गुणों को। परिणाम इसका यह हुआ है राष्ट्रों में तथा जातियों में पारस्परिक घृणा बेहद कम हो गयी है। अतः इससे भी अब योरुप में युद्धों की बहुत कुछ कम सम्भावना रह गयी है।

महाशय बक्ल की युक्तियों की प्रबलता 'अद्यकालीन" युद्ध ही सिद्ध कर रहा है। 'कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा। भानु

मतीने कुनवा जोड़ा'। इसके अनुसार महाशय बक्ल ने शीघ्रगामी यान तथा बारूद के साथ योरुप में युद्धों के न होने को ही सिद्ध कर डाला। बल्क के विचारों पर आदमस्मिथ की 'जातीय संपत्ति" नामी पुस्तक ने तो खूब ही प्रभाव किया। इस पुस्तक को देखते ही बक्ल ने समझ लिया कि अब योरुप में आक्रान्ति आयी और योरुपियन लोग ऋषि मुनि बन गये। यह सब भयानक गलतियां बक्ल न करता यदि उसे राष्ट्रीय उद्देश्यों का पता होता। जब तक सदाचार संबन्धी राष्ट्र उद्देश्यों को न बनावे। तब तक युद्ध कहां से रुक सकते हैं। योरुपियन राष्ट्र में जहां जर्मनी का सांसारिक शक्ति बनाना उद्देश्य है वहां अन्य राष्ट्रों को उसे ऐसा होना देख कर कब सहन हो सकता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने आपको तो संसार का स्वामी बनाना चाहता है परन्तु दूसरों को ऐसा होते हुए नहीं देख सकता है। परिणाम इसका युद्ध स्वाभाविक ही है सांसारिक शक्ति, समुद्रिक शक्ति तथा स्थल शक्ति आदि बनने का उद्देश्य ही उचित उद्देश्य नहीं है। जो कुछ राष्ट्रों का उद्देश्य होना चाहिये वह यही कि दूसरे दुर्बल औरणराष्टों की भलाई की जावे। परन्तु चूंकि अभी तक किसी भी राष्ट्र का ऐसा उद्देश्य नहीं है अतः योरुप क्या संसार में से युद्ध नहीं रुक सकते हैं। परन्तु बक्ल तो 'सदाचार को कोई कारण ही नहीं समझते हैं। अतः वह स्थान स्थान पर गल्ती खायें न तो करें क्या ?